राग
मरुगन्धा

(राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की विविध रचनाओं का संकलन)



शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिए
सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर
द्वारा प्रकाशित



राग मरुगन्धा

सं. रामप्रसाद दाधीच

सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर

प्रकाशक
शिक्षा विभाग, राजस्थान के लिए
सूर्य प्रकाशन मन्दिर,
बिस्सों का चौक, बीकानेर
आवरण एवं कला पक्ष : तूलिकी
मूल्य : रुपये उन्नीस पैसे अस्सी मात्र
संस्करण . प्रथम, 5 सितम्बर 1988
मुद्रक
रुचिका प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

RAAG-MARUGANDHA
(vividh) Edited by
RAMPRASAD DADHICH.
PRICE Rs. 19.80 p.

आमुख

साहित्य में लगाव रखनेवाले रचनाशील अध्यापको की ये पाँच पुस्तकें आपके हाथों में सौंपते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना के रूप में हमारे राज्य की जो एक शानदार परम्परा सन् 1967 से बराबर चली आयी है, उसी की अगली कड़ी में इस साल की इन पाँच पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है। शिक्षको के द्वारा लिखी गयी रचनाओं को सामने लाने के लिए शिक्षक दिवस से अधिक सुसंगत अवसर और कौन-सा हो सकता है।

बालकों को पढ़ाने के साथ-साथ मौलिक लेखन मे लगना भी एक तरह का शिक्षण कर्म ही है। साहित्यकार हमारे समाज के शिक्षक ही तो होते है। उनके अनुभव समाज मे रहनेवाले मानवीय विचारो, गुणों-अवगुणों आदि को लेकर एक तरह का सवाद होता है, जो व्यापक रूप मे चलता रहता है, और व्यक्ति तथा समाज के संस्कारों को सँवारता रहता है। साहित्य-लेखन समाज की शिक्षा का एक अनौपचारिक प्रयास है। मुझे खुशी है कि हमारे राज्य के अध्यापक अपनी समाजपरक चेतना के लिए रचनाशील रहते है और अभिव्यक्ति के तरह-तरह के माध्यमों पर काम करते है।

मुझे बताया गया है कि राज्य के अनेक अध्यापक देश की स्तरीय पत्र-पत्रिकाओ मे भी लिखते है और उनका अपना स्वतन्त्र साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। यह जानकर मुझे अपार सुख मिला है कि इस दिशा मे उन्हें सन् 1967 मे विभाग द्वारा शुरू की गयी इस 'शिक्षक दिवस योजना' से पर्याप्त दिशा मिली है। मैं चाहता हूँ कि साहित्य की सभी विधाओ मे गति के साथ लिखनेवाले कलम के धनी अध्यापकगण शिक्षक दिवस योजना के तहत प्रकाशित होनेवाली पाँचों पुस्तको की अगली कड़ी को इतना स्तरीय बनाये कि उनकी रचनाओ पर राज्य के विद्यालयों मे और साहित्य संस्थाओं मे गोष्ठियाँ आयोजित की जाये। इसके लिए वे अभी से

प्रयत्न मे लग जाये ताकि अगले वर्ष के प्रकाशनो मे उनकी वर्ष के दौरान लिखी गयी प्रतिनिधि रचना ही प्रकाशन मे आये।

इस वर्ष प्रकाशित होने वाली पाँच पुस्तकें ये है :

1. सहस्रधार (कविता सकलन) स ज्ञान भारिल्ल
2. राग मरुगन्धा (हिन्दी विविधा) स. रामप्रसाद दाधीच
3. वदळाव (राज विविधा) स सूर्य शंकर पारीक
4. क्षितिज पार (कहानी संकलन) स. नासिरा शर्मा
5 आकाश के फूल (वाल साहित्य) स. रत्नप्रकाश शील

इनके सम्पादन का जिम्मा उठानेवाले अतिथि सम्पादकों, प्रकाशकों और रचनाशील अध्यापको को धन्यवाद। जिन अध्यापकों की रचनाएँ इस वर्ष प्रकाशन मे न आ सकी, वे निराश न हो, वल्कि अपने लेखन की धार को और अधिक तराशने की कोशिश करे।

शिक्षक दिवस, 1988

(ललित के. पँवार)
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा
राजस्थान, बीकानेर

सम्पादकीय

प्रस्तुत संकलन का सम्पादकीय लिखते समय मुझे रूस के सुख्यात अवार कवि रसूल हमजातोव के एक वक्तव्य की कुछ पंक्तियों का स्मरण हो रहा है। अपने कृतित्व के विषय में अपना स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने लिखा है—'मेरी राहें हमेशा ही सीधी-सादी नहीं रहीं, हमेशा ही मेरे वर्ष चिन्तामुक्त नहीं रहे। मेरे समकालीन, तुम्हारी ही तरह मैं भी अपने युग की हलचलें, दुनिया की उथल-पुथल और बड़ी महत्वपूर्ण घटनाओं के भँवर में रहा हूँ। हर ऐसी घटना लेखक के दिल को मानो झकझोर डालती है। लेखक किसी घटना की खुशी और गम के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। वे बर्फ पर उभरनेवाले पदचिह्न नहीं, बल्कि पत्थर पर की गयी नक्काशी होते हैं। अब मैं अतीत के बारे में अपनी सारी जानकारी और भविष्य के बारे में अपने सभी खयालों को एक तार में पिरोकर तुम्हारे पास आ रहा हूँ, तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक देता हूँ और कहता हूँ—मेरे अच्छे दोस्त, यह मैं हूँ। मुझे अन्दर आने दो।' रसूल हमजातोव के इस ईमानदार आत्मकथन की रोशनी में जब मैं प्रस्तुत संकलन के अध्यापक-लेखकों की रचनाओं का आकलन करता हूँ तो एक विचित्र प्रीतिकर सुखानुभूति से मैं अभिभूत हो जाता हूँ। आजीविका की दृष्टि से पूर्णकालिक अध्यापक के उत्तरदायित्व का वहन करते हुए, हृदय और मानस से सृजनधर्मी रचनाकार की भूमिका का निर्वाह करना वास्तव में अत्यन्त गुरुतर कर्म है। सृजनधर्मी भी ऐसे, जिन्होंने अपने अतीत की गरिमा पूर्ण अस्मिता को विस्मृत नहीं किया और समकालीन हलचलपूर्ण यथार्थ के प्रति पूरी जागरूकता रखी हो। मानो हमजातोव की तरह वे भी हमारे वर्तमान युग के दरवाजे पर दस्तक देते हुए कह रहे हैं—'मैं तुम्हारे पास आ रहा हूँ। मैं हूँ। मुझे अन्दर आने दो।'

अध्यापक यों ही समाज और राष्ट्र का निर्माता होता है और जब वह सौभाग्य से सृजनधर्मी लेखक की भूमिका में आ जाता है तो उसका यह दोहरा व्यक्तित्व

समाज और राष्ट्र को निश्चित रूप से जीवन की नयी दिशाएँ देता है। शब्द का अमोघ शस्त्र अध्यापक-लेखक के हाथ मे अमंगल का अविराम ध्वंस और मंगल का का अविराम सृजन ही करता है। हमजातोव ने ही कहा है – 'महज शब्द नाम की कोई चीज नही है। वह या तो शाप है या बधाई, सुन्दरता है या पीड़ा, गन्दगी है या फूल, झूठ है या सच, प्रकाश है या अन्धकार।'

अध्यापक का अनुभव-ससार बड़ा विराट होता है। वह अपने विद्यार्थियों में अपने समय और अपने समय के विराट समाज के दर्शन करता है। वह अपनी धरती, अपने परिवेश और अपने इर्द-गिर्द के घटनाचक्र का साक्षी होता है और तब उसके भीतर का सृजनशील लेखक ऐसी साहित्य सृष्टि करता है जो केवल अर्थवान ही नही होती, सर्वथा प्रामाणिक भी होती है।

इस सकलन की प्राय. सभी रचनाओ का सत्य यही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी सामाजिक सरचना न केवल विसंगत और वैषम्य ग्रस्त हुई अपितु लड़खडा गयी। लोकतन्त्र, समाजवाद, सामाजिक समता और मानवीय अधिकारो के जो संकल्प हमारे शासक वर्ग ने किये वे कितने आधे-अधूरे रह गये और उनके स्थान पर धर्म, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, और क्षेत्रवाद के प्रेतों ने राष्ट्र के मंच पर किस प्रकार की विध्वंस लीला मचायी यह कठोर सत्य इस संकलन के लेखकों की आँख से ओझल नहीं हुआ। यही लेखकीय प्रामाणिकता है। विचारात्मक निबन्धों मे, संस्मरण और रेखाचित्रों में, रिपोर्ताज और लघु कथाओ मे अध्यापक लेखकों ने इसी व्यथा को चित्रित किया है। हास्य-व्यंग की रचनाएँ तो इस सत्य की सटीक साक्षी है।

इस संकलन के लेखक क्योंकि पहले अध्यापक हैं और बाद मे लेखक अतः शिक्षा से सम्बद्ध समस्याओ, शिक्षा प्रणाली, शिक्षा और शिक्षक के घटते मान-मूल्यों पर उन्होंने खुलकर लिखा है। वे इस स्थिति-नियति के स्वयं भोक्ता हैं अत. यह चित्रण बड़ा आत्म-स्पर्शी है। मानव जीवन के विघटित होते मूल्यो पर जो चिन्ता इन अध्यापक-लेखकों ने व्यक्त की है, वह बड़ी सहज और स्वाभाविक है। अध्यापक और फिर लेखक को मानवीय मूल्यों का सिमटना, विसर्जित होना और ध्वस्त होना पीड़ा नही देगा तो और किसको देगा! व्यंग और हास्य के माध्यम से जो तल्ख अभिव्यक्तियाँ इस सारी स्थिति को लेकर इन लेखकों ने की है तथा हमारे वर्तमान समाज और शासन तन्त्र पर जो उन्होने मारक प्रहार किये हैं, वे प्रशंसनीय हैं। निर्भीकता अध्यापक और लेखक की पहली पहचान है। उनकी यह पहचान इन रचनाओं में मौजूद है। इन रचनाओ का विषय-फलक भी बहुत व्यापक है। अपने अतीत, अपने इतिहास और सांस्कृतिक परम्परा से लेकर ज्ञान-विज्ञान की सूक्ष्मातिसूक्ष्म संवेदना तक इन लेखको की दृष्टि व्याप्त है जो उनकी रचनाओं को जीवन्त बनाती है।

यह तो सम्भव नही लगता कि इस छोटे से सम्पादकीय में इस कृति में संकलित सभी रचनाओं पर समीक्षात्मक टिप्पणियाँ हो। किन्तु कुछ रचनाओ का उल्लेख करने का लोभ मैं छोड़ नहीं पा रहा हूँ। विषय-वस्तु की उपादेयता और गम्भीरता के साथ भाषा, शैली और संरचना की दृष्टि से भी ये बहुत अच्छी रचनाएं कही जायेंगी। रचना, यदि वह साहित्यिक सृजन है तो उसमें साहित्यिक प्राजलता-परिष्कृति होनी चाहिए। इन रचनाओ में मुझे उसके दर्शन हुए है। हथेली पर रैंक (शीताशु भारद्वाज), सब माटी की माया है (गोपाल प्रसाद मुद्गल), संस्कृति की धड़कन भारतीय संस्कृति (गिरधारी लाल व्यास), जीवन मूल्यों की शिक्षा (रूप नारायण कावरा), वनवासियो की कला (रवीन्द्र डी. पण्डया), समकालीन हिन्दी कहानी का व्यक्तिवादी यथार्थ (सरला भूपेन्द्र), रचनात्मक काम (गणेश तारे), गरीबदास का विषाद-लोक (भगवती लाल व्यास), अपेक्षा स्वर्ग की (रामस्वरूप परेश), अभी तो मैं मरा नही (गौरी शकर आर्य), हम अंग्रेजों के जमाने के अफसर हैं (भगवतीलाल शर्मा) इत्यादि ऐसी रचनाएँ हैं जो विषय की गहराई तक जाकर स्थितियो का विश्लेषण-विवेचन करती है। इन रचनाओं मे लेखक की पारदर्शी दृष्टि और उसकी सूक्ष्म संवेदनशीलता के दर्शन होते है।

इस सकलन मे अपनी विधागत प्रकृति से कुछ रचनाएँ लघुकाय है। लेखको ने भी अपनी सश्लिप्ट रचना शैली से उन्हे और भी लघुकाय बनाया है। 'सवा रुपये में भूत, भविष्य और वर्तमान' (श्याम मनोहर व्यास), गरीबी गाँव की (निशान्त), महाकाल की मिनी कहानियाँ (छगन लाल व्यास), प्रार्थना (भगवन्त राव गाजरे), वनदेवी (विष्णु लाल जोशी), पूर्व दिशा बही है (विमला डोरथी), आत्म स्पर्श (विश्वम्भर प्रसाद शर्मा) इत्यादि रचनाओं मे चिन्तन की सूक्ष्मता, कल्पना का लालित्य और भाषा शिल्प का सौष्ठव स्तुत्य है। सबसे बड़ी बात इन रचनाओं मे यह है कि इन लेखकों की चिन्ता का केन्द्र विन्दु मनुष्य है, मनुष्य का सर्वतोभाव कल्याण।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस कृति मे संकलित जिन रचनाओं का इस सम्पादकीय मे उल्लेख नही हुआ, वे किसी दृष्टि से भी हल्की अथवा निम्न स्तर की नही है। उनकी अपनी विशेषताएँ हैं। ऐसी रचनाओ के लेखक कृपा कर, किसी प्रकार का हीन भाव अनुभव न करें।

कुछ शब्द इस सकलन मे संकलित रचनाओ की चयन-प्रक्रिया के विषय में भी कहना जरूरी है। हिन्दी गद्य की विविध विधाओ पर केन्द्रित इस सकलन के लिए शिक्षा विभाग से मुझे कुल एक सौ दो अध्यापकों की एक सौ पचास रचनाएँ प्राप्त हुई थी। इनमे करीब बीस महिला लेखिकाओं की रचनाएँ भी थी। पुस्तक की पृष्ठ सीमा करीब एक सौ साठ पहले से ही निर्धारित थी। अब यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि चयन की प्रक्रिया कितनी दुष्कर व कठिन रही होगी। फिर गद्य की सभी विधाओ को प्रतिनिधित्व देने का प्रश्न भी मस्तिष्क

में था। वस्तु, दृष्टि, भाषा और शिल्प जैसे कुछ आधार-बिन्दुओं का चयन का विषय बनाकर प्राप्त रचनाओं के तीन-चार वाचन के पश्चात ही इन रचनाओं को अन्तिम रूप से स्वीकार किया है। इस प्रक्रिया में अनेक अच्छी रचनाएँ छोड़नी पड़ी है। मैं यह भी दावा नहीं करता कि जो रचनाएँ इस संग्रह मे प्रस्तुत को जा रही हैं, वे चरम श्रेष्ठता की प्रतीक-रचनाएँ हैं। सम्भव है, मुझसे भी कहीं भूल हुई हो। अत जिन विद्वान् अध्यापक बन्धुओं की रचनाएँ इस संकलन में नहीं आ पायीं, वे पृष्ठों की सीमित संख्या की मजबूरी के साथ मेरी निर्णय बुद्धि को भी दोषी समझ सकते हैं। किन्तु मैं इतना विश्वास उन्हें अवश्य देना चाहूँगा कि उनकी रचनाएँ किसी भी प्रकार हीन कोटि की नहीं है। सृजन शिल्प की सामर्थ्य के साथ वे निश्चित रूप से दृष्टिवान लेखक हैं।

अध्यापक-लेखकों की ढेर सारी इन रचनाओं को देखकर कुछ सुखद अनुभूतियाँ भी हुईं। एक तो यह कि वे गद्य की अद्यतन सभी विधाओं में पूरी विश्वसनीयता के साथ सृजन कर्म में जुटे हैं। रिपोर्ताज आज हिन्दी में विरल ही लिखे जा रहे हैं, पर अध्यापक वर्ग इसमें भी पीछे नहीं है। इसी प्रकार रेखाचित्र, संस्मरण व डायरी की विधाओं में भी अध्यापक बन्धु सृजन कर रहे हैं। व्यंग और हास्य की रचनाएँ सर्वाधिक संख्या में प्राप्त हुईं। इससे यह संकेत मिलता है कि जीवन की असह्य यातना और कठोरता को दरगुजर कर, किस पर वर्तमान तन्त्र और व्यवस्था पर हँसा जा सकता है। व्यंग का प्रहारात्मक शक्ति से भी ये अध्यापक-लेखक परिचित हैं और उन्होंने अपनी इन व्यंग-रचनाओं से मौजूदा तन्त्र, प्रणाली और भ्रष्ट आचरण पर तीखा प्रहार किया है।

हाँ, एक अभाव मुझे खला। वह यह कि विज्ञान, तकनीक, नृवंशशास्त्र, समाजशास्त्र जैसे विषयों पर रचनाएँ नगण्य ही रही। ये विषय आज जीवन के अवश्यम्भावी अंग हैं। इन विषयों को लेकर भी लिखा जाना चाहिए।

इस पुस्तक के सम्पादन में अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगता हुआ और शिक्षक बन्धुओं के निरन्तर सृजन कर्म में निरत रहने की शुभाशंसा करता हुआ मैं रसूल हमजातोव के शब्दों से ही अपना यह सम्पादकीय समाप्त करना चाहूँगा— 'मेरे एक दोस्त ने एक बार कहा था —अपने शब्द का मैं खुद मालिक हूँ चाहूँ तो उसे पूरा करूँ, चाहूँ तो न करूँ। मेरे दोस्त के लिए तो शायद ऐसा ही ठीक रहे, मगर लेखक को तो अपने शब्दों, अपने वचनों, अपने शापों का स्वामी होना चाहिए।'

93, सागर कॉलोनी,
जोधपुर (राज०)

(रामप्रसाद दाधीच)

क्रम

निबन्ध

हास्य-व्यंग्य

एकांकी

संस्मरण

रेखाचित्र

रिपोर्ताज

चिन्तन

विविध

राग
मरुगन्धा

हथेली पर रैक

□ शीतांशु भारद्वाज

जी हाँ, हथेली पर रैंक ! चौंकिये नही जनाब , हथेली अर्थात् हाथ और रैंक मायने पत्र-पत्रिकाएँ रखने की वस्तु । जब 'ठेले पर हिमालय' रखा जा सकता है तो हथेली पर रैंक नही रखा जा सकता क्या ?

सरकारी कार्यालयों और सार्वजनिक संस्थानों में हर कहीं आपको अनेक प्रकार के रैंक दिखायी देंगे । फाइलों से लदे-फँदे रैंक, स्टेशनरी से सटे हुए रैंक, पुस्तकों से सजे हुए रैंक, टेलीफोन रखने के रैंक ! किन्तु कुछ रैंक ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम 'मिनी रैंक' कह सकते हैं यानि हथेली पर जमे हुए रैंक !

तो आइये साहब, आज हम आपको डाक-तार विभाग के इन्हीं मिनी रैंकों से परिचित करवाते हैं। क्या आपका ध्यान डाक से आयी हुई पत्र-पत्रिकाओं की ओर भी गया है ? आपने कभी सोचा कि एक नन्हें-से सूचनात्मक पोस्ट कार्ड से लेकर वजनी मैगजीन तक यह सारी डाक किन-किन प्रक्रियाओं से होती हुई आप तक पहुँचती है ? आप नहीं जानते ? चलिये, कोई बात नहीं । हम आपको इस सबसे परिचित करवाने जा रहे हैं ।

चलिये, हम आपको महानगर के एक क्षेत्रीय डाक वितरण केन्द्र की ओर ले चलते हैं । सामने ही सड़क के किनारे लाल रंग का जो बोर्ड टंगा हुआ है, उसके माथे पर साफ-साफ अक्षरों में लिखा हुआ है—'डाक और तार घर' । बोर्ड के समीप पहुँचने पर आपको वहीं एक ओर मिनी अंकों में देश के प्रमुख डाकघरों की पिन कोड संख्या भी दिखायी दे रही होगी । देश भर में ऐसे अनेक डाकघरों का जाल-सा बिछा हुआ है ।

हम लोग जिन पत्रों को लेटर बक्स में डाला करते हैं, सर्व प्रथम उन्हें एक गहरे नीले रंग के थैले में कैद होना पड़ता है । उसके बाद वे प्रधान डाकघर में सॉर्टरों

के हाथों में पहुँचते हैं। यहाँ उन्हें अलग-अलग नामांकित रैकों में रखा जाता है। उसके बाद रेल-डाक सेवा द्वारा उन्हें गन्तव्य स्टेशनों तक पहुँचाया जाता है। इन्हें खेद है कि कुछ घण्टों के लिए उन्हें डाक के बन्द थैलों में भी घुटना पड़ता है। किन्तु थैलों से स्वतन्त्र होते ही उन्हें फिर से सॉर्टरों के हाथों में पहुँचना होता है। सॉर्टर त्वरित गति से उनसे खेलते हुए उनकी छँटाई करने लगते हैं।

'''और, जब ये पत्र-पत्रिकाएँ महानगर अथवा किसी नगर के प्रधान डाकघर में पुन. थैलों में बन्द होकर डाकगाड़ी में सवार होकर क्षेत्रीय वितरण केन्द्र में पहुँचती होंगी तो फिर क्या प्रतिक्रियाएँ होती होंगी! आप यह सब जानने को उत्सुक होंगे।

सब साहब ! सारे पत्र, पैकिट्स और पत्रिकाएँ थैलों से निकल-निकलकर सूने फर्श पर साँस लेने लगते हैं। यहाँ भी सॉर्टर बन्धु उन्हें अलग-अलग रैकों पर रखने लगते हैं। उसके बाद वे मिनी रैकों पर रखने जाने लगते हैं।

जी हाँ, मिनी रैकें यानी कि डाकियों की हथेलियाँ ! इन बन्धुओं की बाँयीं हथेलियाँ दो-ढाई घण्टे के लिए रैकों का कार्य किया करती हैं।

वह देखिये ! 'डाक तार घर' के हॉलनुमा कमरे में अन्दर झाँककर तो देखिये ! वहाँ बेंचों पर बैठे हुए सभी वर्दीधारी डाकिये अपनी हथेलियों पर रैक जमाए हुए हैं। ये उन पर अपने क्षेत्र की डाक जमाते जा रहे हैं। एक नन्हें से पोस्ट कार्ड से लेकर भारी भरकम पत्रिका तक सभी तो वितरण-क्रम में लगते जा रहे हैं। इन लोगों को अपनी सुविधा अनुसार ही यह सारी डाक वितरित करनी होती है।

—फकीरे ! कोई डाकिया अपने सहकर्मी को आवाज देकर उसी के पास जा पहुँचता है। अगले ही क्षण वह हाथ में लिए हुए एक मुड़े-तुड़े पोस्ट कार्ड के बारे में उससे पूछताछ करने लगता है : यह मूलचन्द वही है न, जो पीपल के नीचे रेहड़ी लगाया करता है ?

—हाँ कबूतर ! मुस्कुराकर फकीरा नाम का डाकिया बिना देखे ही अपनी हथेली के रैक की डाक को उलटने-पुलटने लगता है। उस बेचारे को इतनी फुर्सत ही कहाँ कि वह अपने साथी की ओर आँख उठाकर भी देखे !

सुबह-शाम दोनों ही समय आप इन डाक वितरण करने वाले बन्धुओं की हथेलियों पर जमे हुए रैकों को देख सकते हैं। हर समय आप उन्हें डाक को उलटते-पुलटते हुए ही देखते पायेंगे। हेल्पर छोकरा कभी उन्हें पानी पिला जायेगा तो कभी उनके आगे छँटी हुई डाक को रख जायेगा। और, ये भाई हैं कि मुँह चलाते हुए तेजी से अपना काम करते जायेंगे। किसी के मुँह से कोई चुटीली बात निकल गयी तो वहाँ हँसी के चन्द ठहाके गूँज उठते हैं।

—चलिये ! चलिये ! तभी सहायक पोस्टमास्टर अपनी कलाई घड़ी देखने

लगते हैं, समय हो गया है। वे उन लोगों को समय का अहसास कराने लगते है। ऐसे में भी ये बन्धु खड़े-खड़े ही उसी प्रकार अपनी डाक समेटते रहते हैं। पोस्ट-मास्टर ने कुछ ज्यादा ही सख्ती दिखायी तो वे बाहर जाकर किसी पेड़ की छाँह के नीचे बैठकर या फिर किसी चाय की दूकान पर बैठकर हथेली पर पड़ी रैंक की डाक का तालमेल बिठलाते रहेंगे।

वह देखिये! साइकिलों का यह काफिला किधर चला? अगले चौराहे से सारी साइकिलें अलग-अलग दिशाओं की ओर मुड़ जाती हैं। सभी को तो डाक वितरण की जल्दी है। सुबह की डाक बाँटकर उन्हें शाम की डाक भी तो बाँटनी है न!

—भय्या! हमाली चित्ती! बस्ती की कोई बालिका तुतलाकर पूछती है।

—ऐ भैया! कहीं से बुढ़िया माई का स्वर आता है। उसे अपने बेटे के पत्र की प्रतीक्षा है।

— ऐ भाय! हमारी डाक? कोई और कहता है।

इन डाक वितरकों के लिए ये सारे सम्बोधन चिर-परिचित है। सर्दी हो या गर्मी, वे निरन्तर अपने कर्तव्य-पालन में ही लगे रहते हैं। सूर्य सिर के ऊपर तना तपने लगा है। पसीने में नहाता हुआ एक डाकिया किसी मकान की तीसरी मंजिल पर चढ़ता है। सीढ़ियाँ चढ़कर वह बुरी तरह से हाँफ जाता है। माथे का पसीना पोंछकर वह द्वार पर लगी कॉलबेल के बटन को दबाता है।

भड़ाक् से कोई साहबान दरवाजे पर आ खड़े होते हैं। डाकिया मुस्कुराकर उन्हें डाक थमाने लगता है। सूरी साहब, अगर नीचे जीने पर लेटर बॉक्स लगवा दें तो ...।

—लेटर बॉक्स? सूरी साहब के माथे पर बल पड़ जाते है, अपने बजट में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

डाकिया बिना किसी टिप्पणी के चुपचाप नीचे उतर आता है।

सोचिये तो साहब, अगर उस डाकिये के स्थान पर आप होते तो? हो सकता है आप सूरी साहब से लड़ते। सुबह-सुबह आपका मूड खराब हो जाता है। तब तमाम दिन आप हर किसी से लड़ने-झगड़ते रहते।

आइये, लगे हाथ आपको बड़े रैंकों की झलकी भी दिखलाते चलें।

सामने ही जो बीस मंजिली इमारत है न! जी हाँ, वही दायें बाजूवाली। उसकी तीसरी मंजिल के कमरा नम्बर 315 का एक दृश्य देखिये।

—ओए ओ सरदारे! एक बाबू साहब अपनी सीट पर बैठे-बैठे ही दूर स्टूल पर ऊँघते हुए सरदारसिंह चपरासी को आवाज देते हैं, तुझे नौकरी करनी है या नहीं?

—क्या बात है बाबू साहब? चपरासी वहीं आ खड़ा होता है।

—ज़रा छियासठ नम्बर की फाइल तो निकाल! बाबू साहब यहीं मेज से सटे हुए रैक की ओर संकेत करते हैं।

चपरासी उस रैक पर फाइल ढूंढने लगता है।

ये बाबू साहब भी धन्य हैं। जिस फाइल को वे सेकेंडों में ही ढूंढ सकते हैं, उसी के लिए दूर बैठे हुए चपरासी को आवाज देकर अपने पास बुलाते हैं।

चपरासी को आवाज दें भी क्यों नहीं साहब! बाबू साहब को पूरी सुविधाएं जो मिली हुई हैं। और, एक हमारे ड्राफ्टर भाई हैं जिन्हें सीटों में न जाने कितने ताने-उलाहने सुनने को मिला करते हैं। 'ठेंगे पर हिमालय' किसी कवि की कल्पना हो सकती है किन्तु हमारे ये ड्राफ्ट लिखने वाले बन्धु तो सचमुच ही हथेलियों पर रैक जमाए रहते हैं। वास्तविक रूप में 'लाख मरकर संवार्थ' उक्ति को यही लोग चरितार्थ करते आ रहे हैं।

○ ○

सब माटी की माया है

☐ गोपाल प्रसाद मुद्गल

एक दिन बाँस में लोहे के तारों से कसी दराँती बुदबुदाने लगी—"मैं सबसे ऊपर हूँ। घुमावदार। सफेद मुँह। धारदार। चमकदार। मेरी मारकाट से ऊँचे-ऊँचे भी नहीं बच पाते। मेरा अस्तित्व सबसे ऊपर।" इस बात को सुनकर लोहे का बल खाता हुआ तार, तार-तार हो गया। उससे नहीं रहा गया। बल खाता हुआ तार बोला—"अरी दराँती, तू अपनी ही अपनी गाती रहेगी या दूसरे की भी सुनेगी। आँख खोलकर देख। सब मेरी लपेट की माया है। मैंने ही तो तुझे ऊँचे आसन पर बैठाया है। मेरे बल पर ही तो तू मार कर रही है। ऊँचा आसन पाकर इतनी मत इतरा। नीचे वाले का भी ध्यान रख। अगर नीचे वाले का ध्यान नहीं रखा तो तू औंधे मुँह गिरेगी। माटी पर गिरकर माटी में मिल जायेगी।" बाँस ने दोनों की बात सुनी। उससे नहीं रहा गया। तन कर बोला—"मैंने तुम दोनों की बात सुन ली है। बात सुन ली है। दराँती, तुझे पता है तेरा ऊँचा आसन कौन पर टिका है? पता है नीचे कौन है? तार, तू भी सुन, तू किस पर इठला रहा है। तेरे बल कौन पर लगे हैं? तू कौन के बल पर टिका है? तू भी ऊपर देख रहा है। तनिक झुककर नीचे को भी देख। तुम दोनों मेरे चढ़ाए चढ़े हो।"

तीनों की शेखी सुनकर, डंगी को हाथ में थामे हुए आदमी से नहीं रहा गया। बोला—"तुम तीनों अपने मुँह मिया मिट्ठू कब तक बनते रहोगे? दिल्ली के घसेरा कब तक मारते रहोगे? मेरे हाथों की तरफ भी तो देखो। मेरे हाथों ने ही तो तुम्हारे हाथ मजबूत किये हैं। तुम तीनों नीचे की तरफ देखो। मेरे हाथ ढील छोड़ दें तो तुम तीनों ढीले पड़ जाओगे। जो कुछ है सब मेरे दम का जमूड़ा है।"

आदमी की शेखी सुनकर माटी के कण बोले—"अरे बलधारी, तू भी तो नीचे की ओर देख तू कहाँ टिका है। तेरा अस्तित्व किससे है? तू बड़ा है पर बड़ा

बना बिगड़े हैं?"

आदमी को माटी के कणों की चुभन हुई। वह हिल गया। फिर धड़ाम बैठ गया। छुरी छोड़ दी। बाँस, तार और दरांती धड़ाम से औंधे मुँह गिर गए। तार ढीला पड़ गया। दरांती झुक गयी। सब हेकड़ी भूल गए। माटी बोली, "तुम्हारे आकार अलग-अलग हैं। बल अलग-अलग है। काम अलग-अलग हैं, लेकिन जन्मदात्री कौन है? तुम्हारा बल कौन है? और तुम्हारी तो बिसात ही क्या, सब जीवों का आधार कौन है? पहले सोचो, फिर अपनी-अपनी बात कहो।"

सब समझ गये और एक स्वर में बोल पड़े—

"सब माटी की जाया है।
सब माटी की काया है।
सब माटी की माया है।"

गजर बज उठा

■ पुष्पलता कश्यप

मित्र मण्डली पीने-पिलाने को बैठी। तभी परियोजना अधिकारी विक्रम बोला : "आज सब बारी-बारी से बतायेंगे, उन्होंने पीना कब और कैसे शुरू किया ? उसके पीछे कोई कारण रहा है, तो उसे भी !" सब मित्र हुर्रे-हुर्रे करके हंस पड़े और समर्थन में टेबल पीटने लगे।

एडवोकेट बसन्त : "हीयर-हीयर ! सबसे पहले मैं ही बयान करता हूँ। तो भाइयो ! यह तो आप सबको मालूम ही है मैं जात का ठाकुर हूँ।"

"हाँ, हाँ, भइया, आपके पुरखे गाँव के राजा हुआ करते थे। गाँव में बनी तुम्हारी गढ़ी में कई बार हम मुर्गे और दारू की गोठ भी जीम चुके हैं ! तुम्हारा भी गाँव में आज भी वही सामन्ती रुतबा है।"

बसन्त ने अपनी बात आगे बढ़ायी : "हमारे यहाँ हर अवसर पर शराब पीने और पिलाने का रिवाज है, मौका चाहे खुशी का हो, या फिर गमी का ! यह हमारे भोजन का एक आवश्यक अंग है।"

फोरमैन साबिर : "शराब के बिना तो ठाकुरों के यहाँ कोई मान-मनुवार ही नहीं ! सभी सामाजिक-धार्मिक अेडो-टाणों (अवसरों) पर इसका प्रयोग जरूरी है।"

गिलास भरे जा रहे थे। नमकीन सीक कबाब, सलाद और तले हुए काजू की प्लेटों पर हाथ साफ हो रहे थे।

बसन्त : "गाँव में दूसरी कई जातियाँ, जिनमें पिछड़ी और दलित जातियाँ भी हैं, शराब का अपने सामाजिक जीवन के रीत-रिवाजों और व्यवहारों में प्रयोग करती रही हैं, करती हैं।"

: "यह सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्पन्नता का प्रतीक रही है !"

"बड़े-बड़े नेताओं-शायरों, बुद्धिजीवियों, विद्वानों और कलाकारों के लिए यह प्रेरणा, अनुभूति और संवेदना का माध्यम रही है। साहित्य और सभी इतर कलाएँ इसमें सम्पृक्त हैं।"

"एक बार हम लूप केनाल पर पिकनिक मनाने गये थे। आप लोगों को तो पता है, वहाँ कितना शानदार डाक-बँगला है। हम चार दोस्त थे, वहीं ठहरे। चौकीदार को पैसे देकर व्यवस्था के लिए बोल दिया। बोनिस्कॉट, हाईलैण्ड चीफ, शिवाज, रॉयल और ब्लैक गेज की बोतलें हमने पहले ही अपने साथ रख ली थीं।"

कड़ाके की ठण्ड के दिन थे। पीना शुरू किया ही था कि पानी बरसने लगा। तभी बिजली भी चली गयी। चौकीदार मोमबत्तियाँ रख गया था, हमने जला लीं। पीते-पीते न जाने कितना वक्त बीत गया था, तभी चौकीदार की नवोढ़ा औरत उधर आ निकली। वह शायद चिन्ता के मारे अपने आदमी का पता करने आयी थी। हमने देखा— अच्छी कद-काठी और कसी हुई देह की नैन-नक्श से खूबसूरत औरत है। यह शायद इस लाल परी का ही कमाल था कि वह कुछ ज्यादा ही लग रही थी। पानी अब भी बन्द नहीं हुआ था।"

सभी स्तब्ध बैठे सुन रहे थे।

"और फिर सारी नैतिकता धरी रह गई और एक सहाब हमें उस अन्धे कुएं की ओर ले गया जहाँ अक्सर शराबी लोग पहुँच जाते हैं। "उस वक्त तो हम चारों के सिर पर यह चढ़कर बैठी थी!"

"फिर क्या हुआ?"

"इसके पश्चात् उस औरत ने थोड़ी की न ज्यादा, फाँसी लगाकर मर गयी थी।"

"अरेरेरेरे! फिर तुम लोगों का क्या बना!"

"किसी तरह मिला-मिलाकर, सुलह-सफाई से, और कुछ दे-दिलाकर केस रफा-दफा करवाना पड़ा था और क्या!"

"भई, ये बड़ी जालिम और बेमुरव्वत चीज है" बृज ने गहरा उच्छ्वास फेंकते हुए कहा।

"इसी के फेर में राजाओं के राजपाट चले गये। राजा से रंक बन गये बेचारे!"

"मेरे साथ भी एक हादसा गुजर चुका है। तब हॉस्टल में थे। चढ़ते खून की उमर थी। एक दफे मैं पीकर आ रहा था कि रास्ते में किसी को छेड़ बैठा। दिल बेकाबू हो जाने की बात है! कुछ ही दूर चला होऊँगा कि पीछे से उसका भाई आ गया। फिर क्या था फौजदारी हो गयी। पुलिस केस बन गया, और खासी परेशानी के बाद छुटकारा हुआ, काफी फजीहत उठानी पड़ी थी।" यह बृज था।

"दारू के नशे में अक्सर झगड़े-फसाद हो जाते हैं। दारू पीकर अदावत भी निकाली जाती है।" चमन माथुर बोल पड़े।

यतेन्द्र शर्मा : "भई, हमने तो शौक-शौक में सीखी थी। शुरू में ब्राह्मणत्व के संस्कार आड़े आये लेकिन फिर यह सोचकर कि युनिवर्सिटी में दोस्तों में बौड़म और पोंगा पण्डित बनना पड़ेगा, सो नाक पकड़कर चढ़ा गये!"

"अब तो तुम पूरे ड्रम ही हो गये हो! अच्छे-अच्छों को पीछे छोड़ चुके हो। तुमको तो तब तक चाहिए जब तक पीकर पूरे बदमस्त-भून नहीं हो जाते!" गगन ने उसकी तारीफ में पुल बनाया।

सभी ठठाकर हँस पड़े।

"क्या करूँ साली चढ़ती ही नहीं है!" यतेन्द्र ने नाटकीय मुद्रा में कहा।

"अब तुम इसे नहीं, यह तुम्हें पीने लगी है पण्डत प्यारिये!" यह ठेकेदार डालू था।

"सूख कर कांटा हो रहे हो पण्डता! अब तुम्हें यार इतनी नहीं पीनी चाहिए। तुम्हारा लीवर बहुत खराब हो चुका है। तुममें टी बी के भी सिम्ट्म्स हैं।" डा दलपत ने उसे डाक्टरी हिदायत दे डाली।

"छोड़ो यार, मूड मत खराब करो!" कहते शर्मा ने एक घूंट में ही आधा गिलास खाली कर दिया।

विकास : "मैंने तो इससे तब यारी की भई, जब मेरे सभी यार मुझे छोड़-छिटका गये थे। पिताजी की अचानक मृत्यु ने मुझे बेहाल और हक्का-बक्का करके छोड़ दिया था। बेकारी में पत्नी भी मायके जा बैठी थी। किराये का मकान। पिताजी कर्जा छोड़कर मरे थे। अपनी पारिवारिक-सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाने के लिए ही उन्होंने कर्जा लिया था। उनके प्रोविडेण्ट फण्ड में भी कुछ नहीं था। घर में विधवा माँ, अनब्याही जवान बहन, पढ़ रहे छोटे भाई, सभी मुझे मर्द बनकर कुछ कर दिखाने के लिए झकझोर रहे थे। शराब से मुझे परिस्थितियों का सामना करने की हिम्मत मिलती थी। यार लोग शराब जरूर पिला सकते थे लेकिन कोई मदद करने से कतराते थे।"

"शराब चूहे को भी शेर बना देती है! आज यही शराब मेरे शेर को घड़ी-घड़ी रिश्वतें डकार जाने और स्टेनों से चुहल करने का बकायदा हौसला देती है, क्यों?" भँवर ने व्यंग्योक्ति जड़ी। और एक जोर का समवेत ठहाका गूंजा था।

"भई बात को समझा करो!" इस बेमेल-बेडौल जिन्दगी के विरोधाभासों-विसंगतियों और विद्रूपताओं को झेलने-सहने और मतलबपरस्त, फरेबी-घिनौनी दुनिया में जिन्दा रहने के लिए कोई तो सहारा—भरोसे का साथी चाहिए। यहाँ टूटे-भटके दिलों की साथी एक अकेली शराब है।'

"यार ज्यादह भावुक होने और कविता करने की जरूरत नहीं है। लो, और,

लो !" मि. सिंह ने उसके खाली गिलास को पुनः भरते हुए कहा ।

"दोस्तो ! मेरा और कैप्टन जोजेफ का तो काम ही ऐसा है कि शराब के बिना चलता नहीं ! मुझे ट्रकों के साथ बेहद उबाऊ और थका देने वाले लम्बे-लम्बे रूटों पर चलना होता है, और कैप्टन को ऐसे एरिया भी मिल जाते हैं, जहाँ फैमिली नहीं रख सकते ! वहाँ शराब ही बीवी-बच्चों की याद को भुलाती है !" यह सरदार महासिंह था जिसके अपने कई ट्रक हैं और वह खुद ट्रकों के साथ रूट पर चलता है, ड्राइव भी करता है ।

"पाकिस्तान की पिछली लड़ाई में मुझे कन्धे पर जो गोली लगी थी उसमें अभी भी कभी-कभी चीसें चलती हैं । शराब पीने से बड़ी राहत मिलती है । लड़ाई के दिनों में और वैसे भी जब दिमागी टेन्शन बहुत बढ़ जाता है, शराब काफी हौसला देती है । इसके पीने से मौत का डर और शरीर की थकान दोनों से सुकून मिलता है ।" कैप्टन जोजफ ने अपनी कैफियत बयान की ।

"भई मैंने कब शुरू कर दी पता नहीं चला ! पिताजी पीते थे ! उन्हें देखकर मुझे भी पीने की ललक उठती थी । फिर कुछ दोस्तों की सोहबत से चोरी-छिपे चालू हो गये !" ओवरसियर मगन अरोड़ा ने कहा ।

"और कहते-कहते बेटे पक्के खिलाड़ी हो गये !" किसी ने बात को गति दी ।

सभी हँस पड़े । और पण्डत बोल पड़ा .

"दोस्तो ! हमारे यहाँ तो शराबखोरी की बड़ी शानदार परम्परा रही है । हमारे देवता सुरा के कारण ही शायद सुर कहलाते थे । पण्डित-पुरोहित ऐसे यज्ञ करवाते थे जिनमें घी की जगह शराब की आहुति पड़ती थी । श्रोतामणि ऐसे ही यज्ञों में से एक था । दुर्गा, भैरूं जैसे देवी-देवताओं को शराब चढ़ती है और जिसे प्रसाद मानकर ग्रहण किया जाता है ।"

"तभी तुम पण्डत होकर इसी से आचमन करते हो, क्यों !" डॉक्टर की इस फब्ती पर फिर से एक जोरदार ठहाका पड़ा ।

"मुझे तो भई अपने बिजनेस ताल्लुकात बनाने और निभाने के लिए शराब का सहारा लेना पड़ता है ! तुम जानो आजकल पार्टियों से सौदा पटाने और उन्हें ऐण्टरटेन करने के लिए शराब एक जरूरी अंग बन गया है । सरकारी अफसरों और कर्मचारियों से काम पटाने के लिए भी आजकल शराब की बोतल एवं 'काकटेल पार्टियाँ' माध्यम बन गयी हैं । कई बार जो काम नोटों के बण्डल से नहीं होता है वह शराब के प्याले से सहज ही में हो जाता है । आज हालत यह है कि कैसा भी काम हो, बिना माध्यम के नहीं होता ।"

"आज मद्यपान एक फैशन हो गया है !"

"यह तो आधुनिक और प्रोग्रेसिव होने की निशानी है भई ! मिलनसारिता

और सोमियल होने के लिए शराब का इस्तेमाल जरूरी है। आज के युग में शासन में बैठे लोग हों या नौकरशाही में, सभी इसके मतवाले हैं।"

"वैसे, मैं तो स्वास्थ्य के नाम पर जाम पीता हूँ। बस एक या दो पेग भूख जाग्रत करने के लिए। फिर खाना खाकर सो जाता हूँ, सच बहुत मीठी और गहरी नींद आती है। वर्ना तुम जानो, आज की तनाव भरी जिन्दगी में सुख की नींद किसे नसीब है।" घेवरचन्द प्रधान ने कहा।

"हाँ भूख ही तो जगाते हो तुम, पेट की और तन दोनों की भूख।" सभी हँस पड़े। हँसी मानो झरने लगी थी।

"मैंने तो कालेज में रीटा के प्रेम में पड़कर उसकी बेवफाई के गम को गलत करने, उसे भुलाने के लिए पीना शुरू किया था।"

"और आज भी तुम उसी का नाम ले-लेकर पानी की जगह दारू पी रहे हो।" फिर ठहाके गूँजे।

"तुम क्यों पीते हो भाई! तुम्हारी 'होम मिनिस्ट्री' तुम्हारी इस लत को लेकर बहुत नाराज रहती है। हम दोस्तों को छूट गालियाँ निकालती है, आवारा-बदकार और जाने क्या-क्या कहती-सुनती है। रात को तुम्हें अपने पास फटकने तक नहीं देती। घर में तुमसे कोई बोलता नहीं। खाना भी उठकर नौकर खिलाता है और तुम्हारा बिस्तर बाहर लगता है।" बृज ने डालू की ओर मुखातिब होते कहा। बात खत्म होते-होते बड़े जोर के कहकहे शुरू हो गये थे।

"दारू नहीं, तो क्या बापड़ा अब दूध पीना शुरू कर दें!" हँसी फिर फूट पड़ी।

बैठक, आधी रात गुजर जाने के बाद ही कहीं जाकर बर्खास्त हुई।

तब एक दूसरी बैठक शुरू हुई। अपने मालिकों-अफसरों की सेवा-चाकरी करने वाले टहलिये, हाली और मानी बचे-खुचे माल पर टूटकर पड़े, और शीघ्र ही मवाली बन गये थे। सारी थकावट उतर चुकी थी। अब तो बस और ही तलब लगी थी।

उधर, इनकी औरतों और बच्चों को हादसों-दुर्घटनाओं, कर्ज, बीमारी, भूख और जलालत के हर वक्त के दुःस्वप्नों के दौरे पड़ते रहते हैं।

फिर, इस समय के स्फूर्त चेहरे सुबह बुरी तरह अलसाये होंगे, मुर्दनी और स्यापा उन पर गहरा पुता होगा। 'दारूड़िया' होने के टोहके पड़ेंगे, स्वभाव में चिड़चिड़ापन और व्यवहार में फूहड़पन सवालब मिलेगा, और ये लोग अपने कर्तव्य से पनाह चाहते-डोलते फिरेंगे।

००

संस्कृति की धड़कन भारतीय संस्कृति

☐ गिरधारी लाल व्यास

संस्कृति मानव समाज के आज तक के प्राप्त भौतिक तथा वैचारिक उन्नतम मूल्यों की अभिव्यक्ति है जो आगे से आगे आने वाले भविष्यों में विकसित होती चली जायेगी।

अनेक विचारकों ने उसे अनेक रूपों में देखा है। साधारणतया 'संस्कृति' और 'सभ्यता' शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में कर लिया जाता है। कुछ विचारक दर्शन को संस्कृति का अंग मात्र मानते हैं तो दार्शनिक दर्शन को संस्कृति का जनक सिद्ध करने में लगे हैं।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की भावना का उद्भव निश्चय ही तब हुआ होगा जब मनुष्य ने पहले-पहल आग पैदा करने की कुशलता प्राप्त कर ली, स्वर को अर्थवत्ता प्रदान की, हाथों को श्रम का साधक बना लिया, हिंसक पशुओं को वश में करने के सामूहिक प्रयास में सफलता हासिल कर ली। विकास का क्रम चल पड़ा। भौतिक और साथ-ही साथ वैचारिक विकास का चक्र आगे बढ़ने लगा, अपितु आगे बढ़ने की एक अनवरत गतिशीलता प्राप्त कर ली। इतिहास बनने लगा, संस्कृति बनने लगी, सभ्यता बनने लगी, बर्बरता इन्सानियत में ढलने लगी।

युग-युगों बाद संस्कृति का स्वरूप परिभाषित करने के लिए विचारों का, मतवादों का, विवादों का संकलन किया जाने लगा। प्रत्येक देश ने अपनी संस्कृति पर ट्रेड मार्क छाप दिया — मिस्र की संस्कृति, यूनान की संस्कृति, चीन की संस्कृति, भारत की संस्कृति आदि। देश के अन्तर्गत फिर जातियों की उपजातियों की और जनजातियों आदि की संस्कृतियों का विवेचन किया जाने लगा। अंचलों के अनुसार आंचलिकताओं की संस्कृतियों को रेखांकित किया जाने लगा। युगीन संस्कृतियों के विश्लेषकों ने सामान्य और विशेष युग-संस्कृतियां [illegible] . चालू

कर दिया। दास प्रथायुगीन संस्कृति, सामन्तकालीन संस्कृति, पूँजीवादी और समाजवादी संस्कृति की व्याख्याएँ की जाने लगीं। साम्प्रदायिकों ने हिन्दू संस्कृति, आर्य संस्कृति, अनार्य संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति आदि-आदि पर अपनी मोहरें लगानी चालू कर दी। कृषि की संस्कृति, पालन की संस्कृति, शिल्प संस्कृति, कला संस्कृति, संगीत संस्कृति, साहित्य-संस्कृति, गुफा संस्कृति, गिरि-संस्कृति, घाटी संस्कृति और पता नहीं और भी कितनी ही संस्कृतियाँ हैं।

संस्कृतियाँ इतिहास की सुदीर्घ यात्रा में समाज द्वारा रचित, उपयुक्त और अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित वे भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य और साधन हैं जो जीवन्त परम्पराएँ बनकर हमारे विकासों का साक्षात्कार करती हुई हमारे साथ चलती रहती हैं। जैसे इतिहास में एक समग्रता अनवरतता और सार्वभौमिकता होती है, क्षेत्रीयता और ऊर्ध्वगामिता होती है वैसे ही संस्कृति में भी समग्रता, अनवरतता और सार्वभौमिकता होती हैं, क्षेत्रीयता और ऊर्ध्वगामिता होती है। परिवर्तनकारी प्रकृति संस्कृति के अंग-प्रत्यंग को बनाती-सँवारती रहती है। संस्कृति मानव के समान प्रयत्नों से उत्पन्न एक समान धरोहर है। वह मिले-जुले प्रयासों का प्रतिफलन है।

संस्कृति सब के लिए सबका सहयोग दान है, एक मिलाजुला एकीकृत सयोग है। जो संस्कृति कभी विदेशी समझी जाती थी वह भी जब किसी में आकर मिल जाती है तो उसमें एकमेकता आ जाती है। ऐसे में पृथकता लुप्त हो जाती है। इससे पुरानी स्थानीय संस्कृति समृद्धतर होकर अधिक निखर उठती है।

संस्कृति की गतिशीलता के विषय में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का निम्नांकित उद्धरण कितना सार्थक प्रतीत होता है

'जब भारत ने चीनी तीर्थयात्रियों को वे अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थ दिये जिनकी चीन में नवदीक्षितों को दिये जाने के लिए प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती थीं, तब एक चमत्कार घट गया। और तब बुद्ध के उपदेशों भरे उन ग्रन्थों के प्रचार के लिए कागज के साथ ब्लॉक बनाकर छपाई का आविष्कार हुआ, उधर कोरिया में टाइप बने जिनको जापान ने पूर्णता प्रदान की। कागज और छापेखाने ने योरप की यात्रा की और यद्यपि अरब घुड़सवारों की बाग शार्ल मार्ते ने पोत्या के युद्ध में रोक दी, इन आविष्कारों ने बाइबिल के स्थानीय भाषानुवाद प्रस्तुत और प्रसारित करने में सहायता की और सुधार (रिफार्मेशन) आन्दोलन के लिए गहरी आवश्यकता थी। चीनी ज्ञान, भारतीय गणित और आयुर्विज्ञान और यूनानी दर्शन के अध्ययन दमिश्क और बगदाद के बन्तुल-हिकमा में सुरक्षित और अनूदित होकर अरबों द्वारा योरप के मानवतावादी और ईसाई विरोधी ग्रीससंमत 'पेगन' समाजों में पहुँचाये गये। नाविकों के कुतुबनुमा (कम्पास) के अद्भुत परिणाम उस समय दोहराये गये जब चीन में बनी बारूद का उपयोग इंग्लैण्ड के बादशाह हेनरी सप्तम

संस्कृति की धड़कन भारतीय संस्कृति

☐ गिरधारी लाल ध्यारा

संस्कृति मानव समाज के आज तक के प्राप्त भौतिक तथा वैचारिक उच्चतम मूल्यों की अभिव्यक्ति है जो आगे से आगे आने वाले भविष्यों में विकसित होती चली जायेगी।

अनेक विचारकों ने उसे अनेक रूपों में देखा है। साधारणतया 'संस्कृति' और 'सभ्यता' शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में कर दिया जाता है। कुछ विचारक दर्शन को संस्कृति का अंग मात्र मानते हैं तो दार्शनिक दर्शन को संस्कृति का जनक सिद्ध करने में लगे हैं।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की भावना का उद्भव निश्चय ही तब हुआ होगा जब मनुष्य ने पहले-पहल आग पैदा करने की कुशलता प्राप्त कर ली, स्वर को अर्थवत्ता प्रदान की, हाथों को श्रम का साधक बना लिया, हिंसक पशुता को वश में करने के सामूहिक प्रयास में सफलता हासिल कर ली। विकास का क्रम चल पड़ा। भौतिक और साथ-ही-साथ वैचारिक विकास का चक्र आगे बढ़ने लगा, अपितु आगे बढ़ने की एक अनवरत गतिशीलता प्राप्त कर ली। इतिहास बनने लगा, संस्कृति बनने लगी, सभ्यता बनने लगी, बर्बरता इन्सानियत में ढलने लगी।

युग-युगों बाद संस्कृति का स्वरूप परिभाषित करने के लिए विचारों का, सम्वादों का, विवादों का सञ्चलन किया जाने लगा। प्रत्येक देश ने अपनी संस्कृति पर ट्रेड मार्क छाप दिया—मिस्र की संस्कृति, यूनान की संस्कृति, चीन की संस्कृति, भारत की संस्कृति आदि। देश के अन्तर्गत फिर जातियों की उपजातियों की और जनजातियों आदि की संस्कृतियों का विवेचन किया जाने लगा। अंचलों के अनुसार आंचलिकताओं की संस्कृतियों को रेखांकित किया जाने लगा। युगीन संस्कृतियों के विश्लेषकों ने सामान्य और विशेष युग-संस्कृतियों पर तर्क देना चालू

सांस्कृतिक विशेषताओं का व्यावहारिक प्रभावशाली रूप हस्तगत हुआ है। वैज्ञानिक अर्थ में इसमें वे सभी तथ्य उपस्थित हैं जो पारस्परिक आदान-प्रदान में सीखे जाते हैं। इसमें भाषा, नियम-परम्परा, रीति-रिवाज और संस्थाएँ सभी निहित हैं। संस्कृति मानव-समाज की सार्वभौमिक विशेषता है। पशु-समूह में मौखिक भाषा नहीं होती। संस्कृति के आदान-प्रदान और स्फुरण का जो माध्यम है वह उन्हें नहीं मिलता। इसी से संस्कृति एक मानवीय विशेषता मानी गयी है और इसकी उत्पत्ति मानव की उच्च योग्यता में है जो वह अनुभव से ग्रहण करता है और अपने अनुभव, ज्ञान और शिक्षण की प्रतीकों द्वारा जिसमें भाषा मुख्य है, आदान-प्रदान करता रहता है। मानव के शिक्षण का मुख्य विषयवस्तु सत्य का अन्वेषण है और यह शिक्षा द्वारा एकत्रित और संक्रमित होता रहता है। शिक्षण का परिणाम प्रत्येक समूह की संस्कृति का विकास होता है।

संस्कृति-सापेक्षवाद में सभी क्रियाओं और मूल्यों को उनके संस्कृति-प्रसंग में देखा जाता है। व्यक्ति जिस संस्कृति में पला है उसी संस्कृति के प्रभावानुसार वह व्यवहार करता है। इस प्रकार एक संस्कृति में पले व्यक्ति का व्यवहार दूसरी संस्कृति में पले व्यक्ति के व्यवहार से भिन्न होता है। नवफ्रायडवाद के अनुसार व्यवहार तथा व्यक्तित्व के निर्माण का आधार उस देश और काल की संस्कृति है। इधर संस्कृतिवाद मनुष्य की सामाजिक प्रकृति पर बल देने और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप व्यक्ति को ढालने की ओर इंगित करता है।

संस्कृति के विषय में यह माना जाता है कि वह चेतना, नैतिकता और अभिरुचि का विकास और परिशोधन है, वह सभ्यता के विकास की विशिष्ट अवस्था है।

समाजवादी क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण अनिवार्य अंग होता है सांस्कृतिक क्रान्ति। सांस्कृतिक क्रान्ति समाज में आमूल परिवर्तनों की वाहक बनती है। शीघ्रातिशीघ्र निरक्षरता का उन्मूलन किया जाता है तथा शिक्षा के पाठ्यक्रम को वैज्ञानिक समाजवाद की विषयवस्तु देकर पुनर्गठित किया जाता है। जीवन्त परम्पराओं का रक्षण और रूढ़ियों का उच्छेदन किया जाता है। आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक संगठनों का पूर्णतया जनवादीकरण किया जाता है। मनोरंजन के स्तर को ऊँचा उठाया जाकर उसके साधनों को आम लोगों तक पहुँचाया जाता है। लोक-संस्कृति और लोककलाओं को और अधिक विकसित किया जाता है। इन सबका उद्देश्य एक शोषणविहीन समाज की संस्कृति की आधारभूमि तैयार करना होता है जिससे एक उन्नत जन-जीवन जीनेवाली नयी पीढ़ी पैदा हो सके। सभी समाजवादी देशों ने अपने-अपने तरीकों से इस प्रकार की सांस्कृतिक क्रान्तियाँ सम्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। जबकि गैर समाजवादी देश अपने सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने में नाकामयाब रहे हैं। क्योंकि वैज्ञानिक तकनीकी क्रान्ति हासिल करने पर

ने अपने वैरलो के किले और सता तोड़ने के लिए किया। यह दानूब और सावा के युद्ध-क्षेत्रों में उतनी ही निर्णयकारी सिद्ध हुई जितनी कनवाहा में। वास्तव में चीन की चाय, लातिनी अमरीका की तम्बाकू, बेबिलोनिया के ग्रह-चिह्न, कोन्स्तांतीन द्वारा आविष्कृत ग्रहनामी सप्ताह का कलेण्डर सारी दुनिया में फैले। विज्ञानों के उदय और प्रसार के साथ उनसे विचारों की उस प्रगति के चरण-चिह्न मिलते हैं जो विश्वव्यापी हो गये हैं। इतिहास और संस्कृति ने ऐसे पक्ष विकसित किये जिन्होंने स्थानीय इकाई तक रहना अस्वीकार किया और एक प्रकार की समग्रता धारण की।'' संचार साधनों ने राष्ट्रों और जनगण तथा उनकी संस्कृतियों, उनकी जीवन-प्रणालियों और भावनाओं में एक अन्तर्भूत एकात्मकता पैदा कर दी है।"

(भारतीय संस्कृति के स्रोत-पृ. 3-4)

अब यह एक परिपाटी-सी चल पड़ी है कि भौतिक संस्कृति अर्थात् उत्पादन के साधन, उत्पादन की तकनीक और अन्य प्रकार की भौतिक सामग्री और आध्यात्मिक संस्कृति अर्थात् विज्ञान, कला, साहित्य, दर्शन, नीतिशास्त्र, शिक्षा आदि को अलग-अलग करके देखा जाने लगा है। संस्कृति एक ऐतिहासिक परिघटना होती है और उसका विकास सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं के फलस्वरूप निर्धारित किया जाता है। किन्तु उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी होता है जो दूसरों को प्रभावित करता है।

वर्गीय समाज-व्यवस्था में संस्कृति भी द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु वर्गहीनता आने पर उसमें पुनः एकरूपता आने लगती है।

शिक्षाविदों में कई चिन्तकों ने अन्तःसांस्कृतिक शिक्षा (Intercultural education) पर जोर दिया है जिससे तनाव, पूर्वाग्रह और विभेदों-मतभेदों को एक स्थिति तक सीमित और संयमित किया जा सके। इसके अन्तर्गत रचनात्मक कार्यक्रम से वर्गभेदों का गुणावगुण-विवेचन करते हुए सामुदायिक जीवन में सहयोग की भावना विकसित करने का प्रयास किया जाता है। विद्यालय में विभिन्न समुदायों के बालक-बालिकाओं को धार्मिक और जातीय भेद-भावों को भुलाकर मिलकर काम करने तथा मेलने पर विशेष बल दिया जाता है।

अन्तःप्रेरित क्रिया अथवा स्वतःस्फूर्त क्रिया (Self activity) इसका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यह क्रिया कर्त्ता के स्वयं के निर्देशन और निश्चय से उत्पन्न होती है। यह क्रिया चेतनास्तर से नीचे उत्पन्न होनेवाली सहज क्रिया तथा बाह्य दबाव के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली क्रिया से एकदम भिन्न हो जाती है। अधिगम एक प्रकार की अन्तःप्रेरित क्रिया का रूप होता है।

संस्कृति से तात्पर्य समूह विशेष के सभी विशिष्ट मानव-मूल्यों से है। केवल भाषा, कला, विज्ञान, कानून, नीति, धर्म इत्यादि ही नहीं, बल्कि इनमें इमारतें, औजार, यन्त्र, यातायात योजनाएँ इत्यादि भी सम्मिलित है, जिनमें आध्यात्मिक-

सांस्कृतिक विशेषताओं का व्यावहारिक प्रभावशाली रूप हस्तगत हुआ है। वैज्ञानिक अर्थ में इसमें वे सभी तथ्य उपस्थित हैं जो पारस्परिक आदान-प्रदान से सीखे जाते हैं। इसमें भाषा, नियम-परम्परा, रीति-रिवाज और संस्थाएँ सभी निहित हैं। संस्कृति मानव-समाज की सार्वभौमिक विशेषता है। पशु-समूह में मौखिक भाषा नहीं होती। संस्कृति के आदान-प्रदान और स्फुरण का जो माध्यम है वह उन्हें नहीं मिलता। इसी से संस्कृति एक मानवीय विशेषता मानी गयी है और इसकी उत्पत्ति मानव की उच्च योग्यता में है जो वह अनुभव से ग्रहण करता है और अपने अनुभव, ज्ञान और शिक्षण की प्रतीकों द्वारा जिसमें भाषा मुख्य है, आदान-प्रदान करता रहता है। मानव के शिक्षण का मुख्य विषयवस्तु सत्य का अन्वेषण है और यह शिक्षा द्वारा एकत्रित और संक्रमित होता रहता है। शिक्षण का परिणाम प्रत्येक समूह की संस्कृति का विकास होता है।

संस्कृति-सापेक्षवाद में सभी क्रियाओं और मूल्यों को उनके संस्कृति-प्रसंग में देखा जाता है। व्यक्ति जिस संस्कृति में पला है उसी संस्कृति के प्रभावानुसार वह व्यवहार करता है। इस प्रकार एक संस्कृति में पले व्यक्ति का व्यवहार दूसरी संस्कृति में पले व्यक्ति के व्यवहार से भिन्न होता है। नवफ्रायडवाद के अनुसार व्यवहार तथा व्यक्तित्व के निर्माण का आधार उस देश और काल की संस्कृति है। इधर संस्कृतिवाद मनुष्य की सामाजिक प्रकृति पर बल देने और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप व्यक्ति को ढालने की ओर इंगित करता है।

संस्कृति के विषय में यह माना जाता है कि वह चेतना, नैतिकता और अभिरुचि का विकास और परिशोधन है, वह सभ्यता के विकास की विशिष्ट अवस्था है।

समाजवादी क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण अनिवार्य अंग होता है सांस्कृतिक क्रान्ति। सांस्कृतिक क्रान्ति समाज में आमूल परिवर्तनों की वाहक बनती है। शीघ्रातिशीघ्र निरक्षरता का उन्मूलन किया जाता है तथा शिक्षा के पाठ्यक्रम को वैज्ञानिक समाजवाद की विषयवस्तु देकर पुनर्गठित किया जाता है। जीवन्त परम्पराओं का रक्षण और रूढ़ियों का उच्छेदन किया जाता है। आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक संगठनों का पूर्णतया जनवादीकरण किया जाता है। मनोरंजन के स्तर को ऊँचा उठाया जाकर उसके साधनों को आम लोगों तक पहुँचाया जाता है। लोक-संस्कृति और लोककलाओं को और अधिक विकसित किया जाता है। इन सबका उद्देश्य एक शोषणविहीन समाज की संस्कृति की आधारभूमि तैयार करना होता है जिससे एक उन्नत जन-जीवन जीनेवाली नयी पीढ़ी पैदा हो सके। सभी समाजवादी देशों ने अपने-अपने तरीकों से इस प्रकार की सांस्कृतिक क्रान्तियाँ सम्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। जबकि गैर समाजवादी देश अपने सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने में नाकामयाब रहे हैं। क्योंकि वैज्ञानिक तकनीकी क्रान्ति हासिल करने पर

भी जब तक सम्पूर्ण क्रान्ति सम्पन्न नहीं की जाती- जो कि शोषण प्रधान व्यवस्था में सम्भव हो नहीं सकती, तब तक यथार्थ समाज उन्नत सांस्कृतिक स्तर को प्राप्त नहीं कर सकता।

खैर, अब भारत में लौट आयें।

भारत की प्रकृति विश्व में बेजोड़ है—भौगोलिक प्रकृति भी और जनमानस प्रकृति भी। इसे यहां विस्तार में कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। अनेक कबीले आये। सभ्य भी थे और बर्बर भी। उन्होंने इस देश की सीमाएँ लाँघकर प्रवेश किया, लड़े-भिड़े भी और आखिर स्वयं इसमें समा गये या इस देश की जनता ने उन्हें अपनी बाँहों में समेट लिया। उन्होंने दिया भी, लिया भी। कुल मिलाकर अनेक संस्कृतियों का एक सुसम्पन्न उज्ज्वल रूप भारतीय संस्कृति के रूप में निखर गया।

इसलिए भारतीय संस्कृति भी अपनी अनुपम छवि लिए विश्वपटल पर दृष्टिगोचर हुई। यह संस्कृति अन्तर्हीन विभिन्न जातीय इकाइयों का एक संयुक्ताक्षर है। जातीयताओं और विजातीयताओं की भावनात्मक एकता का एक स्पृहणीय संगम है।

विश्व संस्कृति को भारत का योगदान कोई सानी नहीं रखता। यह भी सच है कि विश्व से उसने संस्कृतियों के रूप में बटोरा भी बहुत है। किसी को अपने में समेट लेने की क्षमता इस देश की जनता से बढ़कर और किसी देश की जनता में नहीं रही। अथवा यों कहा जा सकता है कि उसके सहज स्वाभाविक सौन्दर्यात्मक आकर्षण में खिंचे बिना औरों को चैन नहीं मिला। आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता और प्रतिभा ने सबको अपना प्रिय, अपना अन्तरंग बना डाला। आर्यों और आस्ट्रिक, सुमेरी और असुरी, गुर्जरी और हूण, इस्लामी और योरोपीय आदि सभी से भारत ने लिया है और अन्यों को अपना बहुत कुछ दिया भी है।

वेद और वैदिक साहित्य, आयुर्विज्ञान, महाकाव्य, रसकर्म, संगीत, गुहाचित्र, शिलालेख, शिल्प और वास्तुकला, गणित, भौतिकी, ज्योतिर्विज्ञान, शिक्षा और समाजव्यवस्था, अर्थशास्त्र व नीति-न्याय-योग आदि सभी माध्यमों से भारत ने विश्व को प्रभावित किया है। शक, पल्लव, कुषाण, आभीर, गुर्जर, मुस्लिम, अंग्रेज आदि सभी जातियों का योगदान भारतीय संस्कृति को समृद्ध करने में समुचित रूप से प्राप्त हुआ है। मिर्जा गालिब हमारी अपनी अमूल्य धरोहर है तो दूसरी ओर हमारे साहित्य को शेक्सपीयर, मिल्टन, मिल आदि ने भी पूरी तरह प्रभावित और समृद्ध किया है। क्या अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हमने गेटे और शिलर, लेसिंग और हर्डर, रूसो और वोल्तेयर, हाइने और ह्यूगो, गोगोल और पुश्किन, मार्क्स और ऐंगल्स, तुर्गनेव और तोलस्तोय, लेनिन और बुखारिन, गोर्की और शोलोखोव, फास्ट और फास्ट तथा अन्य किन्तु प्रेरणास्पद साहित्यकारों का आत्मीयकरण नहीं किया?

शान्ति और विश्व बंधुत्व की भावना को ठोस और रचनात्मक व्यापक आयाम देने में आधुनिक विश्व में भारत का एक महत्वपूर्ण स्थान है जिस पर हम भारतीयों को ही नहीं, अपितु दूसरों को भी गौरव का अनुभव हो रहा है। उसके साथ यह भी सही है कि शान्ति के दुश्मनों का हमें भी शिकार होना पड़ रहा है।

यह ठीक ही कहा गया है कि भारत ने शून्य (0) के अंक का ज्ञान देकर विज्ञान को एक अनुपम वस्तु प्रदान की, लोकायत और सांख्य का दर्शन देकर, भौतिकवादी दर्शन की आधारशिला रखी, वेदान्त देकर भाववादी दर्शन को एक विशिष्ट प्रकार का चरमोत्कर्ष प्रदान किया, रंगभेद मिटाने के आन्दोलन का सूत्रपात जननायक महात्मा गांधी ने किया, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से विश्वशान्ति की पक्षधरता को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने परिपुष्ट किया और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अन्तरतम को सुविकसित करने का भारत का गीत-सन्देश दुनिया के कोने-कोने में पहुँचाया। शान्तिनिकेतन, भारत का सूक्ष्म रूप आज भी प्रतीक रूप में संस्कृति सूत्र प्रदान कर रहा है।

भारतीय संस्कृति विश्वसंस्कृति का हृदय है—उसका अन्तरंग। यही उसकी धड़कन है।

○ ○

शंकराचार्य की शिक्षा दृष्टि

☐ श्र. ना. कौशिक

षड वेदांगों में शिक्षा का स्थान प्रथम है—

शिक्षा कल्पो निरुक्तं च छन्दो ज्योतिषमेव च।
षष्ठ व्याकरणं चेति वेदांगानि विदुर्बुधा।

शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष एवं व्याकरण इन सभी अध्ययनों में उच्चारण की शुद्धता सर्वोपरि रही है। अशुद्ध उच्चारण अर्थ को ही नहीं उच्चारण-कर्ता को क्षति पहुँचाता है। शुद्ध वाणी से आयु बढ़ती है।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति। (पा. शि. 52)

बालक शंकर में ध्यान को एकाग्र करने की अद्भुत क्षमता थी। दस वर्ष तक अध्ययन और अपनी मौलिक सूझ द्वारा तत्त्व ग्रहण की अद्भुत क्षमता ने इन्हें जगद्गुरु बना दिया। स्वयं शङ्कर ने कोई शिक्षा पद्धति नहीं दी। उनका समग्र व्यक्तित्व अपने में एक विचार है।

समता, सर्वज्ञता एवं ब्रह्मैकात्म्य-बोध ही सम्यक दर्शन है— वह परमात्मा बाहर, भीतर, सर्वत्र है— उसे पाना ही तृप्ति है। जीवन के सौ से भी अधिक पक्षों पर उन्होंने शिक्षा विषयक ठोस विचार दिये। अक्षर विद्या से ब्रह्मविद्या तक उनका सीधा कथन जन-कल्याण निमित्त रहा है। किसी वस्तु या तत्त्व को समझकर उसका भाष्य शंकराचार्य की विशेषता है।

अद्वैत ही परम साक्षात्कार है—भ्रम, मोह, संशय द्वैत के परिणामस्वरूप हैं। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। शङ्कर का मत है कि शिक्षा—परमपिता का अद्वैत ज्ञान है। पुरुषार्थ द्वारा ही परम श्रेय की प्राप्ति है। विद्या से अमृत तत्त्व प्राप्त होता है—

विद्ययामृतमश्नुते।

स्थिर बुद्धि को प्राप्त होना शिक्षा का उद्देश्य है। स्वाध्याय बुद्धि द्वारा लोक

लिये– ब्रह्मसूत्र-भाष्य, उपनिषद् भाष्य, गीता भाष्य, आदि अनेक वैदिक और पौराणिक ग्रंथों के भाष्य के अतिरिक्त—ब्रह्मविद्या, अक्षर विद्या, आदि पचासों प्रकार की विद्याओं का उल्लेख किया।

कोई भी विद्या ब्रह्म और ज्ञान से भिन्न नहीं है। शिक्षा के राष्ट्रीय पक्ष को दृष्टिगत रख भारत की चारों दिशा में—क्रमश: बद्रीनाथ मठ--उत्तर में, कांचीपरम मठ—दक्षिण में, जगन्नाथ पुरी पूर्व में, द्वारका मठ—पश्चिम में स्थापित किये।

शिक्षा के परम लक्ष्य में ब्रह्म के अतिरिक्त व्यावहारिक जगत में औदार्य, सहिष्णुता और त्याग को ब्रह्म प्राप्ति का आधार कहते थे। सर्वस्व त्याग की भावना ही जीवन को प्रखर करती है। उन्होंने एक कापालिक को उसकी तन्त्र सिद्धि के लिए अपना सिर देना स्वीकार कर लिया था— यहाँ कहना असंगत न होगा कि निश्चित अवसर पर बलिवेदी पर जब सिर विच्छेद के लिए कापालिक ने खड्ग उठाया उसी समय इनके एक शिष्य पद्मपाद ने कापालिक का वध कर शंकराचार्य के प्राणों की रक्षा की।

अनवरत अध्ययन द्वारा उन्होंने गहनतम वैदिक ग्रंथों का भाष्य कर विश्व का उपकार किया। कर्त्तव्याकर्त्तव्य-निर्णय सुख और दुख को व्यक्तिपरक बताया, विद्या त्रिकालज्ञ होनी चाहिए। मनु से शंकराचार्य प्रभावित रहे हैं।

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञान परं स्मृतम्।

(मनु 12-85)

शिक्षा और गुरु की प्रतिष्ठा उनके लिए सर्वोपरि रही हैं। बिना गुरु के ज्ञान नहीं है—

गकार. सिद्धिद. प्रोक्तोरेफः पापस्य हारकः।
उकारो विष्णुरव्यक्त सितयात्मा गुरुः परः॥

(तन्त्रसार)

('ग' सिद्धि देने वाला, 'र' कष्ट हरण करने वाला 'उ' अव्यक्त विष्णु रूप है) ऐसा गुरु है। मोक्षमूल गुरोः कृपा। सर्वं गुरुमयं जगत्।)

शंकराचार्य ने शिक्षा के उद्देश्यों को शाश्वत जीवन मूल्यों की संज्ञा दी। कर्म के विषय में उनकी मान्यता थी—तत्त्व ज्ञान से स्थूल सृष्टि तक प्राकृत संसार ब्रह्म की ही कर्म सृष्टि है। समस्त क्रियाकलाप ब्रह्म रूप ही है। मनुष्य सर्व कर्म करता हुआ भी कर्म मुक्त है। समग्र सृष्टि सूत में सूत के ही मणकोंवत् परम ब्रह्ममय है—

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। (गी. 7.7.)

किसी भी स्थिति में ज्ञान की सत्ता बनी रहती है—चाहे वह अल्पज्ञ रूप में हो या सर्वज्ञ रूप में। यह सर्वज्ञ दृष्टि ही तत्त्वज्ञ की दृष्टि है। यही कारण है कि ब्रह्म

मे ब्रह्म से भिन्न कुछ नही है। जिज्ञासु या साधक आधे अधूरे पुरुषार्थ को त्याग पूरे प्राणपण से अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व द्वारा प्रभु का वरण करता है—ऐसी ही स्थिति मे परम पिता परमात्मा का यथार्थ स्वरूप प्रकट हो जाता है।

वैराग्य और विवेक जीवन के दो आधार स्तम्भ हैं। वेदान्त 'मैं' का उत्तर देता है, जगत और उसके नियामक की बात करता है। यही विचार व्यक्ति को व्यक्ति से ऊपर उठाते हैं। गुरु के द्वारा ही यह सम्भव है। ऐसे मे रागद्वेष स्वत निर्मूल हो जाते हैं। यही सत्य का साक्षात्कार है। शंकर इसी सत्य के सूत्रधार हैं। यही उनका जीवन था।

वर्तमान सन्दर्भ में शकराचार्य की शिक्षा की प्रासगिकता को स्वीकार किया जाकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में यह स्पष्ट हो ही जाना चाहिए कि ये कैरियर स्कूल तात्कालिक उपयोगिता दे सकते हैं। अतः आवश्यकता है वैचारिक स्कूलो की, विद्वत्ता का मार्तण्ड चिन्तन और अध्ययन चाहता है। कैरियर एज्यूकेशन का ज्ञान से सम्बन्ध नही है। देश की वर्तमान शिक्षा न पूर्णतया कैरियर आधारित है और न ही ज्ञानात्मक। यही कारण है कि विद्यालय से विश्वविद्यालय तक मे शिक्षा के अतिरिक्त सब कुछ सम्भव है—अव्यवस्था और डिग्री शिक्षा ने प्रमाण पत्री मनुष्यों का निर्माण किया।

शिक्षा के इतने प्रचार-प्रसार के पश्चात् असन्तोष, अनिश्चितता का एक सैलाव उमड़ा पड रहा है। असद्भाव और निर्दोष स्त्री बच्चों तक की हत्याओं से वर्तमान मे समाचारपत्रो की सुर्खियाँ, दुर्व्यसनों के शिखर और चोरी से शवों तक के अगो का व्यापार—मेरे समक्ष शिक्षा एक प्रश्न चिह्न के रूप मे उपस्थित है।

शंकराचार्य ने जो स्वरूप दिया उसमे है व्यक्ति का संस्कार। आज एक बार पुन. उसी सस्कार को दृढ करने का प्रश्न उपस्थित हो गया है। शिक्षा वह है जो व्यक्ति मे शुभ कर्म की अपेक्षा रखती है, उसके व्यवहार में सम्यक् दर्शन को जन्म देती है। शिक्षा एक प्रजातन्त्रात्मक स्वभाव है। अथर्वा ने स्पष्ट किया—उद्यानं ते पुरुष नावयनाम् (8-1-6 अथर्व) याने मनुष्य ऊपर उठ नीचे न गिर।

शंकर ने अपनी शिक्षा में एक ही बात दी—

समच्छध्वं सवदध्यम्।

शंकराचार्य का शिक्षा दर्शन वर्तमान शिक्षा सस्कार के लिए अनिवार्य है—

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वोमनो यथा वः सुसहासति॥—ऋक्

हो सभी के मन तथा सकल्प अविरोधी सदा।

मन भरे हों प्रेम से जिसमे बढ़े सुख सम्पदा॥

○ ○

प्रतिभा-स्वरूप विश्लेषण

☐ गिरधरप्रसाद मिश्रा शास्त्री

कवि-सम्मेलन के मंच पर क्रमशः कविजन कविताओं का पाठ करके सहृदय रसिक-जनों को आह्लादित कर रहे थे। उन्हीं रसिकों में सम्मिलित होने का मुझे भी सौभाग्य मिला। मैं प्रत्येक कवि के मुखारविन्द से कविता का आनन्द ले रहा था, और मन-ही-मन सोच रहा था कि मैं भी इस कवि की भाँति एक कविता बनाऊँ। मैंने टूटे-फूटे अक्षरों को जोड़ने का दुःसाहस किया, परन्तु उस कवि की भाँति सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। मैंने सोचा, आखिर ऐसी कौन-सी वस्तु उस कवि में निहित है, जिससे उसके मुख से रसमयी, आनन्दमयी और उल्लासमयी कविता निःसृत होती है। यकायक मेरे मस्तिष्क में आया, अरे ! यह तो केवल कवि की प्रतिभा है। प्रतिभा क्या है और उसके विषय में पूर्व और पश्चिम के विद्वानों की क्या धारणा है, उसका मैंने गम्भीर अध्ययन किया। यही अध्ययन प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है।

पौर्वात्य एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रतिभा का महत्वपूर्ण स्थान है। 'प्रतिभा' में मूल शब्द है 'भा' जिसका सीधा अर्थ है - चमक। विभिन्न उपसर्गों के समायोग से प्रभा, आभा, प्रतिभा आदि अनेक शब्दों का निर्माण होता है। प्रतिभा शब्द का अभिप्राय ऐसी ज्योति अथवा प्रकाश-विशेष हो जाता है, जिसके द्वारा किसी विशिष्ट वस्तु का स्वरूप प्रतिभासित हो उठे। संस्कृत के साहित्यशास्त्र एवं दर्शन-शास्त्र में प्रतिभा का विश्लेषण किया गया है। काव्याचार्यों में दण्डी, वामन, रुद्रट, भट्टतौत, अभिनवगुप्त, कुन्तक, महिमभट्ट, राजशेखर तथा मम्मट आदि ने प्रतिभा का प्रत्यक्ष विवेचन किया है।

आचार्य दण्डी ने प्रतिभा या प्रतिमान को पूर्ववासना के गुणों से सम्बन्धित प्रतिपादित किया है तथा वामन ने प्रतिभा को कवित्व का मूल बीज अंगीकार

रते हुए उसको जन्म-जन्मान्तरगत संस्कार विशेष माना है। अभिनवगुप्त ने भी अभिनवभारती' में प्रतिभा को प्राक्तन संस्कार ही स्वीकार किया है। भट्टतौत तथा भिनवगुप्त ने उसे प्रज्ञा का एक विशेष प्रकार माना है (प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी तिभा मता)। नव-नव उन्मेष करने वाली प्रज्ञा का नाम प्रतिभा है। दूसरे शब्दों प्रतिभा प्रज्ञा का वह प्रकार है, जो रूपों का सृजन अथवा उद्घाटन करती है। भिनवगुप्त ने प्रतिभा की व्याख्या को 'ध्वन्यालोक लोचन' में विशद रूप से तिपादित किया है कि सामान्य रूप की सृष्टि करने वाली शक्ति सामान्य प्रतिभा और रसात्मक रूपों की सृष्टि करने वाली शक्ति कवि प्रतिभा है। रुद्रट ने यह भी स्पष्ट किया है कि कवि प्रतिभा रसात्मक रूपों की सृष्टि किस प्रकार करती है :—

मनसि सदा सुसमाधिनि, विस्फुरणमनेकधाऽभिधेयस्य।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः॥

अर्थात् समाहितचित्त में जिसका उन्मेष होने पर प्रसन्न पदावली में अभिधेय र्थ का अनेक प्रकार से स्फुरण होता है, वही शक्ति अथवा प्रतिभा है। यही मन्तव्य हिम भट्ट को भी स्वीकार्य है, यथा —

रसानुगुणशब्दार्थ चिन्तास्तिमित चेतसः।
क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभा कवेः॥

आचार्य कुन्तक ने कहा है कि "प्रतिभा वह शक्ति है जिससे कि प्रयत्न के बिना ही शब्द में कोई अपूर्व सौन्दर्य स्फुरित ना दिखायी देता है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार संस्कृत साहित्य शास्त्र में प्रतिभा का विवेचन निम्न रूप में प्रस्तुत किया है कि मानव मस्तिष्क की मौलिक एवं बौद्धिक शक्ति का नाम है प्रज्ञा, जो जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों का परिपाक है। प्रज्ञा के विविध रूप एवं कार्यक्षेत्र है। इनमें से एक रूप है प्रतिभा, जिसका कार्य है, नव-नव रूपों का उन्मेष तथा सृजन करना। प्रतिभा का भी एक विशिष्ट रूप है— कवि प्रतिभा, जो रसात्मक रूपों का सृजन करती है। हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने उसके दो भेदों का विधान किया है, जन्मजात एवं कारणजन्य। इनको सहजा या औपाधिक भी कहा गया है। पण्डित जगन्नाथ का भी यही मत है। ये सहजा प्रतिभा को जन्मान्तरगत संस्कार और औपाधिक को व्युत्पत्ति तथा अभ्यास का परिपाक् मानते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने प्रतिभा के स्वरूप का विशद विवेचन मनोविज्ञान शास्त्र के अन्तर्गत किया है। मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर प्रतिभा का अर्थ है—असाधारण कोटि की मेधा अथवा असामान्य सहजशक्ति। अतः मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिभा सामान्य नियमों और रूढ़ि रीतियों के बन्धन से मुक्त एक असाधारण दैवी-शक्ति है, जिसका कार्य है सृजन अथवा आविष्करण। मनोविज्ञान का यह विवेचन भारतीय काव्यशास्त्र के विवेचन से मूलतः भिन्न नहीं है, क्योंकि भारतीय काव्य-

शास्त्र के प्रतिनिधि आचार्यो के पूर्व उद्धृत मन्तव्यों का सारांश भी प्रायः यही है कि प्रतिभा एक असाधारण जन्म-जन्मान्तरगत दैवीशक्ति है, जो नियतिकृतनियमरहिता है, और जिसमें अपूर्व वस्तु निर्माण की क्षमता है ।

फ्रायड आदि अनेक मनोविश्लेषकों ने प्रतिभा की नये सिद्धान्तों के आधार पर व्याख्या की है । वे प्रतिभा का मूल उद्‌गम अवचेतन और चेतन मन और नैतिक चेतना के संघर्ष को मानते हैं । हमारे अवचेतन और चेतन मन के बीच तीव्र संघर्ष होता है, वही संघर्ष जितना अधिक तीव्र होगा उसकी प्रतिभा उतनी प्रखर और प्रबल होगी । इस प्रकार मनोविश्लेषण शास्त्र के आचार्य प्रतिभा की असाधारण तथा अतिमानवीय विशेषताओं का कारण अवचेतन के इस प्रच्छन्न संघर्ष में खोजते हैं ।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि भारतीयशास्त्र ने प्रतिभा के तत्त्व को दैवी वरदान या प्राक्तन संस्कार का परिपाक कहकर सन्तोष धारण कर लिया था, तथा पश्चिम के आस्तिक दर्शन ने इसे दैवी स्फुलिंग मानकर अपनी जिज्ञासा का समाधान कर लिया, तथा आधुनिक युग के भौतिक वैज्ञानिक शास्त्रों ने इसे अवचेतन मन के अन्तर्द्वन्द्वों मे उद्‌गम खोजने का प्रयत्न किया है । वास्तव में प्रतिभा मानव व्यक्तित्व का एक रहस्यमय अंग रही है, और समय-समय पर दार्शनिकों एवं साहित्यकारों ने इसकी सफल व्याख्या करने का सद्‌प्रयत्न किया है । प्रतिभा विषयक एक तथ्य तो शाश्वत सत्य है कि प्रतिभा अन्तःकरण की एक असाधारण शक्ति है, अथवा वह एक प्रकार की अन्तः संस्कारों की परिपाक् मूर्ति है ।

◦ ◦

जीवन मूल्यों की शिक्षा

□ रूपनारायण काबरा

शिक्षा का मूल प्रयोजन व्यक्ति को बेहतर इन्सान बनाना है, जो उदात्त मानवीय गुणों से युक्त हो, जिम्मेदार नागरिक हो, विश्व बन्धुत्व और समता भावी समाज का पक्षधर हो और तीव्र गति से बदलती इस दुनिया में मानवता के कल्याण एवं विकास हेतु अपना योगदान देने को तत्पर हो, सक्षम हो।

अन्य प्रयोजन तो शिक्षा ने पूरे कर दिये—व्यक्ति को विज्ञान और तकनोलॉजी के गहनतम ज्ञान से समृद्ध कर दिया, भौतिक सुख एवं समृद्धि के नये आयामों से उसे अवगत करा दिया पर न हो सका तो मात्र यही कि वह अन्तर्निहित मानवीय गुणों को समझे, उन जीवन मूल्यों को व्यवहार में लाने की क्षमता अर्जित करे, जिनसे वह अच्छा इन्सान बन सकता है। आज का इन्सान चाँद-सितारों तक जा सकता है पर उसे नहीं आता है धरती पर इन्सान की तरह खड़ा होकर चलना।

आज का संसार वैज्ञानिक उपलब्धियों का युग है। विज्ञान के आविष्कारों ने अपरिमित शक्तियाँ प्रदान की हैं और इन्हीं के आधार पर हमारी भौतिक सुख-सुविधाएँ बढ़ गयी हैं। भौतिक साधनों की होड़ ने संसार में कई समस्याओं को जन्म दिया है। आर्थिक विषमताएँ बढ़ रही हैं। सभी प्रकार की अनैतिकताएँ जीवन मूल्य बन गयी हैं। चोरी, बलात्कार, धोखा-धड़ी, नकली दवाएँ, खाद्य-पदार्थों में मिलावट, हत्या आदि आज के युग की दैनिक चर्चा का अंग बन चुकी हैं। सत्य, दया, प्रेम, सहानुभूति, अभय, अहिंसा, दान, क्षमा, उदारता, साहस आदि जो मानव जीवन के आवश्यक अंग हैं, वे आज के युग में लुप्त होते जा रहे हैं। जब शालाओं में पढ़ाये जानेवाले विषयों के माध्यम से मानवीय मूल्यों को उभारा जाये तो सत्यं, शिवं, सुन्दरं की भावना का प्रसार होगा एवं चित्त-वृत्ति में बदलाव आयेगा।

वैज्ञानिक आज के विकास के कारण भविष्य की बड़ी भयावह स्थिति का वर्णन करते हैं। जबकि आनेवाले सैकड़ों वर्षों मे विश्व मे अधिक रेगिस्तान होंगे, अधिक जगल नष्ट होगे, अधिक कल-कारखाने होंगे और अत्यधिक प्रदूषण होंगे। औषधियाँ मनुष्य के कल्याण हेतु हैं पर औषधियों के बड़े-बड़े कारखाने वायु-मण्डल को प्रदूषित कर नयी बीमारियों को जन्म देते है। और औषधियाँ स्वय भी एक बीमारी को रोकती हैं तो दूसरी नयी बीमारी को जन्म देती है।

आइन्स्टीन ने कहा था हम एक तरफ विकास के साधनों को बढ़ा रहे हैं वही दूसरी ओर हम हमारे उद्देश्यों मे भ्रमित भी होते जा रहे हैं और विनाश के साधन तैयार कर रहे हैं। आणविक परीक्षणों के प्रदूषण विश्व को विकृत और विकलांग बनाते जा रहे हैं। यह बात स्पष्ट है कि जब तक बालक के मस्तिष्क का विकास सही रूप से नही किया जाता है तब तक अच्छे भविष्य की कल्पना करना व्यर्थ है। अत आज इस बात की सर्वाधिक आवश्यकता है कि शिक्षा में भावात्मक पक्ष पर सर्वाधिक महत्व दिया जाये व मानवीय मूल्यों का शिक्षण हर समय दृष्टि मे रहे।

आज का बालक जब यह देखता है कि भ्रष्ट आचरण करनेवाले भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न है तो उसकी मानवीय मूल्यों से विरक्ति हो जाती है। शिक्षा के माध्यम से हम बालक मे सच बोलने की प्रवृत्ति तो जागृत करते हैं परन्तु वह अपने घर तथा समाज मे चारों ओर झूठ का साम्राज्य देखता है। दूकानदार पिता का पुत्र, पाठशाला मे ईमानदारी का पाठ तो पढ़ता है परन्तु वह कम तोलना, मुनाफाखोरी, रिश्वतखोरी की कला अपने वातावरण में रात-दिन देखता है।

ऐसी परिस्थिति मे अध्यापक को जागरूक रहकर इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न, घटनाओं के माध्यम से, अवश्य करना चाहिए जिसमें यह प्रतीति पायी जाये कि वर्तमान समाज की इन अनैतिकताओं का प्रभाव व्यक्ति पर कितना बुरा पड़ता है। नकली दवाओं के बेचने से पैसा अवश्य मिलेगा परन्तु उनका उपयोग कितना घातक होता है। इस प्रकार के दृष्टिकोण से सब कुछ स्पष्ट किया जाये तो बालक को सही शिक्षा देने मे हम सफल हो सकेंगे।

अब प्रश्न यह है कि मूल्यों की शिक्षा कौन दे? क्या आज का अध्यापक इतना सक्षम है? आज हमें शिक्षकों के दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाने के उपाय करने होंगे। साथ ही भविष्य मे सक्षम शिक्षकों को ही इस क्षेत्र मे प्रवेश देना होगा। ये मूल्य हमे किसी अलग विषय के रूप मे नही वरन् पूरे शैक्षिक ढाँचे में समाविष्ट करने होंगे। विषयों मे पहले से ही मूल्यों का समावेश तो है पर हमने उस पर ध्यान नहीं दिया। केवल पाठों को पढने तक ही हमारे लक्ष्य सीमित रहे। अब हमें उस पक्ष पर बल देना है, जीवन मूल्यों को उभारना है।

सारे मूल्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और अच्छे जीवन के आधार तत्व हैं। सत्य, धर्म, प्रेम, शान्ति, सहिष्णुता और अहिंसा ये पाँच मूल्य ही मूल मूल्य हैं।

पंचतन्त्र की कहानियाँ, ईसप की कहानियाँ, हितोपदेश, पौराणिक कथाओं, रामायण, महाभारत, बौद्ध जातकों, जैन कथाओं के माध्यम से जीवन मूल्यों को हम बच्चों के मानस में स्पष्ट कर सकते हैं पर जब तक आचरणों में ये मूल्य नहीं आयेंगे तब तक बालक भ्रमित ही रहेंगे। *और एक भ्रमित बालक अच्छाई की* अपेक्षा बुराई की तरफ ही बढ़ेगा।

बालकों की पढ़ाई का कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसमें मानवीय मूल्यों की शिक्षा देने का अवसर न हो। अलग से पाठ्यक्रम बनाकर मूल्यों को नहीं पढ़ाया जा सकता। हमारे जीवन की घटनाओं के साथ शिक्षण प्रसंगों और मूल्य शिक्षा को सम्बद्ध करना होगा। यदि शिक्षक ने स्वयं 'नैतिक' बातों और मूल्यों को हृदयंगम कर लिया है तो वह इन्हें छात्रों तक सम्प्रेषित कर सकेगा। विद्यालय का परिवेश जितना अनुशासित, शान्त, रचनाशील, न्याय संगत, सहयोगात्मक एवं सहानुभूतिमय होगा, उतनी ही आसानी से बालक जीवन-मूल्यों को ग्रहण कर सकेगा। वस्तुतः विद्यालय विशाल समाज का लघु संस्करण ही तो है, अत बुनियादी मानवीय मूल्यों का बीजारोपण, अंकुरण वहीं किया जाना चाहिए। पर मूल्य शिक्षा देने का एक मात्र अभिकरण विद्यालय ही नहीं है अपितु हमारा घर, परिवार, परिजन, अभिभावक, समाज, प्रभुता सम्पन्न लोग, राजनेता, सामाजिक कार्यकर्त्ता सभी को यह काम करना है और पूरे सामंजस्य के साथ।

• •

वनवासियों की कला

☐ रवीन्द्र डी. पण्ड्या

दक्षिणी राजस्थान आदिवासी बहुल क्षेत्र है। यहाँ की कोरी नग्न पहाड़ियों के आँचल में बने वनवासियों की झुग्गी-झोपड़ियों की दीवारों पर बने भित्ति रेखांकन अपना विशिष्ट आकर्षण प्रस्तुत करते हैं। शहरी सभ्यता के प्रभाव से व नित्य नये घरों के बनने से यहाँ के वनवासी भीलों की प्राचीन भित्ति चित्रांकन परम्परा प्रायः समाप्त होती जा रही है, किन्तु शहर से दूर एकान्त जंगलों एवं पालों में बसे आदिवासियों की झुग्गी-झोपड़ियों में शुद्ध भीली संस्कृति के दर्शन होते हैं।

कुछ समय पूर्व मुझे आदिम जाति शोध-संस्थान, उदयपुर के सौजन्य से "वागड़ प्रदेश के वनवासियों की कला" पर व्यापक शोध-सर्वेक्षण करने का मौका मिला था। लगभग दो हजार से अधिक दूर-दराज के वनवासियों की झुग्गी-झोपड़ियों में गया। बाँसवाड़ा जिले का कुशलगढ़, सज्जनगढ़, घण्टाली, आनंदपुरी क्षेत्र—जिसका विस्तार गुजरात एवं मध्य प्रदेश की सीमाओं तक है। इन इलाकों में प्रवेश पाते ही देखता चला जा रहा था—"घास व मिट्टी एवं गोबर के सहारे बनी वनवासियों की झुग्गी-झोपड़ियाँ, बाँस की डण्डियों पर खड़ा उनका मकान, एक ही प्रवेश द्वार, ऊपरी छत नीचे तक झुकी हुई जो सागवान के पत्तों या लम्बी घास के तिनकों या खपरेलों से ढकी ऊपरी छतें। अन्धेरी झोपड़ियों में रोशनी एवं हवा मात्र ढके हुए पत्तों या खपरेलों के छिद्रों से ही आ-जा सकती है। भीलों की झुग्गी-झोपड़ियों में एक दो टूटी-फूटी खटिया, मिट्टी एवं पाषाणों के बर्तन, अनाज पीसने की हाथ की चक्की, छत की लकड़ी के सहारे लटकता बाँस का गूँथा पालना, फटी-पुरानी गुदड़ियाँ, घर की दीवारों पर लगी खूँटियों के सहारे लटकते खेती के औजार—तीर कमान, बन्दूक, कुल्हाड़ी, गोफण, धारियाँ, मछली पकड़ने की 'यू' आकार की बाँस की लकड़ी पर गूँथी हुई मछली की झाल, आटा झाड़ने की बनी काष्ठ की

'काचरोट', खाद्य सामग्री (घी, दूध, आटा, रोटी) रखने को मिट्टी से निर्मित सन्दूकनुमा-कलात्मक 'सोहरो'। घर के बाहर पानी का स्टैण्ड, जिस पर दो डण्डों के सहारे पड़ा नालनुमा खजूर का मोटा तना जिस पर रखे हुए पानी के काले मटके, छतों में लटकती हुई बाँस की टोकरियाँ, घर के आँगन में पहरा देता स्वामीभक्त उनका 'कुत्ता' आदि वनवासियों के जीवन संघर्ष की जीती जागती कहानी प्रस्तुत कर रहे थे।

काठ एवं माटी जिनकी छत्र-छाया का आधार है अत्यधिक निर्धन एवं संघर्ष-रत जीवन के बावजूद उनकी झुग्गी-झोपड़ियाँ नीम की तूली एवं रामजी रंग से विविध रेखांकनों, भित्तिचित्रों से अलङ्कृत थीं।

कला मानव के साथ पैदा हुई और प्रकृति के कण-कण से उसका पालन हुआ। *ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया, कला उतनी ही सुन्दर रूप धारण करने* लगी। कला का इतिहास मानव जीवन के इतिहास से सम्बन्धित है। चित्रकला से तो मानव समाज अत्यन्त प्राचीन काल से परिचित है। गुफावासी आदिमानव के मनोभावों ने भी भीतों पर रूप को अवतरित किया और आज का सभ्य समाज भी अपने गुप्त-सुप्त, ऊर्ध्व-सुप्त मनों-विचारों को चित्रित करने का प्रयास करता जा रहा है। मानव मन के विकास का बहुत कुछ इतिहास चित्रकला के अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है। चित्रों के द्वारा तनाव-मन के भाव साकार होते है और वे अपनी अमूर्तता छोड़कर आकार ग्रहण कर लेते है तब फिर मानव के एकाकी मन का सूनापन चित्रों से दूर होने लगता है। कला के द्वारा विराट भगवान् की सर्व सुलभ अनुकृतियाँ भक्तों के लिए अमूल्य निधि बन जाती है।

युगों-युगों से अज्ञात के अँधेरे में डूबे इस आदिवासी बहुल क्षेत्र में बसने वाले आदिवासी भी अपनी मनोगत भावनाओं को दीवारों पर चित्र बनाकर प्रकट करते हैं। आज भी इन आदिवासियों में भित्ति चित्रण की परम्परा विद्यमान है।

घर में विवाह प्रसंग पर जहाँ एक ओर बाजे बजेंगे कि दूसरी ओर भीलों की रमणियाँ मिट्टी की दीवारों पर अनेक सलोने चित्रों को अंकित करने लगती है। भारतीय महिलाओं ने प्राचीन लोक-कला को अब तक बचाये रक्खा है। घर का मुख्य द्वार देवी-देवताओं तथा पशु-पक्षियों की रेखानुकृतियों से आकर्षक बन जाता है। मनोहरता की वृद्धि के साथ दैत्यों और दानवों की प्रसन्नता प्राप्ति के लिए मंगलमय अवसरों पर चित्रों का चित्रण करना इन आदिवासियों में आवश्यक अंग माना जाता है। इनका प्रायः यह मानना है कि —शुभ प्रसंगों में यदि भूत-पिशाचों की अर्चना न की जाय तो वे क्रुद्ध होकर उत्पात करते है। आदिवासियों के बड़वा का कथन है कि कई देवता मोर बनकर विचरते रहते है, तो कुछ हिरण, घोड़ा, तोता, चीता, सर्प, बिच्छू आदि का रूप धारण कर संसार की सुषमा को देखते रहते हैं। अतः विवाह प्रसंगों पर पुत्र जन्म के अवसर पर तथा देवी-देवता की पूजा के

उपलक्ष्य में दीवारों पर प्रांगण में आदिवासी अपनी कोमल तूलिका से सामान्य रंगों के सहारे चित्रण करते रहते हैं। धार्मिक त्योहारों, विवाह प्रसंगों पर स्त्रियाँ एवं पुरुष अपनी झुग्गी-झोंपड़ियों को सँवारने-सजाने में लग जाते हैं। घर का आला, कोना, बाहर का चौखट, चबूतरा, भीत या दीवारों की किनारी, धान की कोठियाँ, हाथ की चक्की के थाले, मिट्टी से बनी सन्दूकनुमा सोहरी/बॉक्स/इन सभी को लेपने के बाद इन्हें कोरा नहीं छोड़ा जाता।

अनपढ़ आदिवासी शिल्पियों की सर्जनात्मकता एवं कौशल को देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। आज का कुशल चितेरा बिना उपकरणों के सहज रूप में भीली चित्रांकन नहीं कर सकता। इस प्रदेश के भील-चित्रकार सहज रूप में आत्म संचरित रेखाओं की लयात्मकता द्वारा त्रिभुजाकार, वृत्ताकार, षट्कोण, अष्टकोण, खड़ी-पड़ी, आड़ी-तीरछी आदि रेखाओं के माध्यम से विविध रूपाकारों का सृजन करते हैं। रूपाकारों का समानुपात, सरलता व क्रम-बद्धता देखकर आश्चर्य होता है। भीलों की झुग्गी-झोंपड़ियों की दीवारें चाहे ऊबड़-खाबड़ हों या चाहे समतल, विविध रूपाकारों से ढक जाती हैं। वनवासियों की प्रमुख कृतियाँ गोदराज, महाराज, मायरत जिन्हें स्थानीय वागडी भाषा में 'भराड़ी' के नाम से कहा जाता है। यह चित्र विवाह प्रसंग का प्रमुख शुभ चिन्ह बिन्दु है। यहाँ के कुछ आदिवासी गाँवों में 'भराड़ी' का रेखांकन घर का बड़ा जामाता ही अंकित कर सकता है, इस तरह का रिवाज भीलों में प्रचलित है। कहीं-कहीं भीलों के सरदार —ढोली चित्रांकन का कार्य करते हैं। भीलों की अन्य कृतियों में मोर, तोता, वर-वधू की आकृतियाँ, नाचने-कूदने की आकृतियाँ, पशु-पक्षियों का रेखांकन, चिड़ियाओं की आकृतियाँ, सूर्य, चन्द्र, तारे, स्वस्तिक चिह्न, हथेलियों के छापे आदि सफेद खड़िया या रामजी रंग से अंकित करते है। नीम की तूली चित्रांकन का प्रमुख साधन है।

शोध-सर्वेक्षण के दौरान भीलों के प्रमुख शिल्पियों से साक्षात्कार करने का अवसर मिला, जिनमें महिला शिल्पी भी शामिल हैं।

कुशलगढ़ क्षेत्र की अनपढ़ आदिवासी महिला शिल्पी श्रीमती काली (आयु 40 वर्ष) की मिट्टी से निर्मित उनकी कलात्मक कोठियाँ, मिट्टी की बनी 'सोहरी' जिस पर उभारी अश्वारोही की आकृतियाँ, विविध रूपाकारों से सुसज्जित मिट्टी की कोठियाँ देखने योग्य हैं। श्रीमती काली की अनेक कृतियाँ क्षेत्रीय भीलों की झोंपड़ियों में देखी जा सकती हैं। इनकी कृतियाँ शैली आदि-मानव कालीन कला की ओर संकेत करती है।

घण्टाली क्षेत्र की 80 वर्षीय आदिवासी महिला, श्रीमती गोमलीबाई द्वारा निर्मित आज से 40 वर्ष पूर्व की बनी कलात्मक मिट्टी की कोठी ($7' \times 4'$) देखने में आयी। अनाज की इस कोठी का बाह्य भाग ज्यामितिक आलेखनों, अश्व पर

सवार पुरुषाकृतियों को मिट्टी से उभारकर इसे सुसज्जित करने का प्रयास किया है। उभारी गयी आकृतियाँ आदिमानव कालीन कला के जीते-जागते उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

आनन्दपुरी (भुखिया) क्षेत्र का सफल भील चित्रकार श्री सरदार है। विवाह प्रसग पर 'भराडी', मायरत, सूर्य-चन्द्र, मोर आदि आकृतियों को चित्रित करने का कार्य करता है।

हलद (हल्दी), श्वेत खडियाँ या चावल, रामजी रग उसके प्रिय रंग हैं। श्री सरदार का दस वर्षीय बालक इस प्रदेश का एक सफल बाल-कलाकार है।

डूँगरपुर जिले के 'शीथल' ग्राम का श्री हीरा भील राजस्थान राज्य के सफल भीली चित्रकारों मे से एक है। अपने घर के बाहर बनी एक सौ फीट लम्बी दीवार पर लाल मिट्टी का लेपन कर श्वेत खडिया एव मिली वॉस की डण्डी से विविध विषयो के चित्रो को उसने रेखांकित किया है। चित्रों के क्रम मे चौकीदार की आकृति का अंकन कर बाद में त्रिशूल धारी एव तलवार लिए पुरुषाकृतियाँ, नृत्यरत आकृतियाँ, शिकार के दृश्य, माताजी की आकृतियाँ, पिता अपने दो पुत्रो को कन्धो पर बैठकर नाचते हुए का चित्र आदि यहाँ चित्रित है। श्री हीरा भील की चित्रमाला देखने योग्य है।

इस प्रदेश के भीलों के माडणे, भित्तिचित्र, मिट्टी मे उभारी आकृतियाँ, विविध रूपाकारों, विशेषकर उनके रंग-रेखाओ के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वनवासियो की कला प्राचीन कालीन कला से मेल खाती है। प्रागैतिहासिक कालीन कला, शैलचित्रों के संकेत उनकी कला परम्पराओं में देखे जा सकते है। शोध-सर्वेक्षण के दौरान यह देखने में आया कि इस क्षेत्र की आदिवासी कला समृद्ध होते हुए अब प्रायः समाप्त होती जा रही है। शहरी संस्कृति भीलों की झोपड़ियो के प्रवेश द्वार पर जा खड़ी हुई है।

लुप्त होती आदिवासी कला-संस्कृति को बचाये रखने एव संरक्षण हेतु राज्य सरकार भीली चित्रकारो, काष्ठ एवं शिल्पकारों की कलाओ के लिए प्रोत्साहन पुरस्कारो की शुरुआत करे। इससे उनमे कला की प्रवृत्ति जाग उठेगी और कला के संस्कारों का नवीन शुभारम्भ होगा।

विलक्षण व्यक्तित्व के धनी अज्ञेय

☐ हनुमान दीक्षित

लक्ष्मीकान्त वर्मा ने एक जगह लिखा है, 'अज्ञेय नाम की व्याख्या कठिन है। अज्ञेय का अर्थ है एक ऐसा चट्टानी इच्छा-शक्ति का व्यक्ति, जो इतना द्रवित रहनेवाला है कि प्रत्येक पल एक-एक क्षण जीने की जिजीविषा से ओत-प्रोत जीवन को पूरी तरह निचोड़कर एक बिन्दु में सिन्धु को समाहित करनेवाला हो।' अज्ञेय का जीवन उस सदानीरा नदी की तरह है जो पहाड़ों से उतरकर नित नयी राहों का अन्वेषण करती हुई कलकल बहती है। हिन्दी साहित्य में निराला के बाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी अज्ञेय ही थे। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना, पत्रकारिता, सम्पादन आदि सभी क्षेत्रों में अज्ञेय छाये रहे। ऐसा बहुत कम होता है कि कोई आदमी इतने लम्बे समय तक उच्च शिखर पर बैठा रहा हो। उतार-चढ़ाव अनिवार्य है। मगर यहाँ प्रकृति भी उनकी तरह मौन रहकर देखती रही तथा अज्ञेय भरपूर जिन्दगी जीते हुए अन्तिम साँस तक साहित्यिक गतिविधियों के केन्द्र में रहे।

अज्ञेय ने अपने जीवन काल में जितना विरोध सहा, उतना शायद ही किसी दूसरे साहित्यकार ने सहा होगा, लेकिन इस लगातार विरोध एवं आलोचना के बीच भी अज्ञेय बिना किसी उत्तेजना के शान्त चित्त, मौन रहकर सन्नाटे का छन्द बुनते रहे।

मैं सभी ओर से खुला हूँ।
वन-सावन-सा अपने में बन्द हूँ
शब्द में मेरी समाई नहीं होगी
मैं सन्नाटे का छन्द हूँ।

अज्ञेय एक ऐसे आदमी थे जो सदैव अपनी शर्तों पर जीते थे और जिन्होंने

अपनी मान्यताओं के लिए भले ही तरह-तरह की आलोचनाएँ झेलीं, पर समझौता नहीं किया। वे सदैव कवि की तरह से जिये। फोटोग्राफी, बागवानी, बढ़ईगिरी से लेकर यायावरी तक में कविता जैसी पूर्णता मिलती है।

प्रकृति तथा मानवीय अस्तित्व की मूलभूत चीजें अज्ञेय की कविताओं में बार-बार आती हैं। बानगी देखिए—'मरुस्थल में चट्टान' कविता में, चट्टान से टकरा कर हवा—

उसके पैरों में लिख जाती है
लहरीले सौ सौ रूप।
और तुम्हारे रूप की चट्टान में
लहराता टकराकर मैं ?
अपने ही जीवन की बालू पर
अपनी साँसों से लिख रह जाऊँगा।

अज्ञेय का लेखन मामूली ढंग का न था। जैसा कि प्रख्यात पत्रकार प्रभाष जोशी ने एक जगह लिखा है, 'अज्ञेयजी के बराबर ज्ञान-विज्ञान और साहित्य जाननेवाले लोग मुट्ठी भर भी नहीं रहे होंगे। जैसा साहित्य उन्होंने लिखा वैसा वही लिख सकते थे।' यह रचनात्मक ऊर्जा ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति थी। वे अपने जीवन में जितने मौन थे, रचना में उनका यह मौन कुछ ज्यादा ही भरा हुआ है। 'बालू के घरौंदे' कविता देखिए —

बालू के घरौंदे बनाये हैं तीन बालकों ने
उन्हें नहीं पता है कि इस बालुका में वे कण हैं
जिनके विकिरण से आरम्भ होती है प्रक्रिया
संसार के सभी घरौंदों के विनाश की
बालुका से खेलते हुए तीन बालक
सागर का स्वर : जल के कि रेत के
मानव ही मानव की तीसरी आँख है
तुम्हारी आँख बन्द क्यों है, देवता ?

ऐसे आधुनिक हिन्दी साहित्य के विलक्षण व्यक्तित्व, जिनका पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय था, का जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कसया में हुआ था। अज्ञेय की प्रारम्भिक शिक्षा लखनऊ व जम्मू में हुई। 1927 में लाहौर के फार्मन कालेज में बी. एससी. में प्रवेश लिया। इसी अवधि में इन्होंने रघुवंश, रामायण, मारलो, लॉगफेलो, ह्विटमेन, एलियट आदि को पढ़ा। इसी दौरान इनका क्रान्तिकारियों—आजाद, सुखदेव से सम्पर्क बना। 1930 में अन्य साथियों के साथ गिरफ्तार हुए। लाहौर, अमृतसर, दिल्ली जेल में यातनाएँ भोगीं। यहीं पर इन्होंने 'चिन्ता', 'शेखर एक जीवनी',

'कोठरी की बात' आदि पुस्तकों की रचना की। इसके पश्चात 1936 में 'सैनिक' के सम्पादकीय से जुड़े। 1937 में बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर 'विशाल भारत' में काम किया। दूसरे महायुद्ध के दौरान आकाशवाणी में काम किया। 1940 में प्रथम विवाह सन्तोष से हुआ जो असफल रहा। 1943 में सेना में भर्ती व 1946 में अलग हुए। दूसरा विवाह कपिलाजी से किया। 1950 तक 'प्रतीक' का सम्पादन किया। विदेश भ्रमण हेतु यूरोप तथा जापान गये। केलिफोर्निया विश्वविद्यालय बर्कले में भारतीय संस्कृति के व्याख्याता रहे। वहीं पर इला डालमिया से परिचय। सन् 1964 में 'दिनमान' का सम्पादन किया। 1967 में आस्ट्रेलिया व यूरोप का पुनः भ्रमण किया। इसके बाद जोधपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य के आचार्य के रूप में कार्य किया। 1976 में जर्मनी की यात्रा की। 1977 में दैनिक नवभारत टाइम्स का सम्पादन किया। 1978 में उनकी कृति 'कितनी नावों में कितनी बार' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। इसी पुरस्कार राशि से अज्ञेयजी ने वत्सल निधि की स्थापना की, जिससे लेखक शिविर आदि आयोजित किये जाते हैं। कुछ अर्से पूर्व इनको युगोस्लाविया के 'स्वर्ण माल' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 4 अप्रैल 1987 को दिल्ली में चिर निद्रा में लीन हुए।

अज्ञेय अपने जीवन की अन्तिम साँस तक लिखते रहे और हिन्दी साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं।

काव्य — भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर मुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, महावृक्ष के नीचे, नदी की बाँक पर छाया, ऐसा कोई घर आपने देखा है, सदानीरा।

कथा साहित्य — विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल, ये तेरे प्रति रूप, सम्पूर्ण कहानियाँ, उपन्यास — शेखर : एक जीवनी, (दो भाग) नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी।

निबन्ध और पत्र — त्रिशंकु, सबरंग, आत्मनेपद, हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, सब रंग और कुछ राग, आलवाल, लिखि कागद कोरे, अद्यतन, जोग लिखी, सवत्सर, स्रोत और सेतु, व्यक्ति और व्यवस्था, अपरोक्ष, युग सन्धियों पर, धारा और किनारे, स्मृति लेखा, कहाँ है द्वारका, छाया का जंगल।

नाटक — उत्तर प्रियदर्शी।

यात्रा साहित्य — अरे यायावर रहेगा याद-?, एक बूँद सहसा उछली।

डायरी — भवन्ति, अंतरा, शाश्वती।

इसके अलावा आपने अनेक पुस्तकों का सम्पादन व अनुवाद किया।

अज्ञेय उतने ही आधुनिक हैं जितने पुराने। यदि काल को ठहरा हुआ मानकर हम अज्ञेय को देखेंगे तो शायद अज्ञेय हमसे छूट जायेंगे। काल की निरन्तरता के साथ अज्ञेय को देखना होगा। रघुवीर सहाय के शब्दों में, 'आज तक किसी विशेषज्ञ ने यह नारा नहीं दिया है कि रचना के धर्म को रचना से अलग कर देना चाहिए। पर बीसवीं सदी के समाप्त होते-होते प्रयत्न यही हो रहा है। इस खतरे से लड़ने के लिए अज्ञेय का एक जीवन और चाहिए। क्योंकि इस लड़ाई के शत्रु के हजार चेहरे हैं। जो जड़ों से तोड़कर जीवन को फिर नये सिरे से अधर में स्थापित करनेवाली संस्कृति का आक्रमण बढ़ता जा रहा है। अज्ञेय इस आक्रमण के खिलाफ प्रदर्शन तो नहीं करते थे पर उन संस्कारों को मान्यता देते थे जो उखड़ेपन को रोकनेवाली चेतना कवि के भीतर जगाते थे।'

टी. एस. एलियट कहते हैं, 'घर वह है जहां से हम यात्रा शुरू करते हैं।' अज्ञेय उस घर में चले गये उन्हीं के शब्दों में—

मेरा घर
दो दरवाजों को जोड़ता है
मेरा घर
दो दरवाजों के बीच है
उस घर में
किधर से भी झांको
तुम दरवाजे से बाहर देख रहे होगे
तुम्हें पार का दृश्य दीख जायेगा
घर नहीं दीखेगा।
मैं ही मेरा घर हूं।
मेरे घर में कोई नहीं रहता
मैं भी क्या
मेरे घर में रहता हूं
मेरे घर में
जिधर से भी झांको...

हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता के स्वर

☐ विद्या पालीवाल

हिन्दी काव्य मे राष्ट्रीयता के स्वर की बात प्रारम्भ करने से पूर्व हृदय मे स्वर्गीय माखनलाल चतुर्वेदी की ये पंक्तियाँ प्रतिध्वनित हो रही हैं :

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ।
चाह नही प्रेमी माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊँ ॥
मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक ॥

मातृभूमि पर अपने प्राणों की आहुति चढ़ानेवाले वीरों की चरण-रज हेतु अपना अस्तित्व पुष्प रूप में समर्पित करनेवाली आत्मोत्सर्ग की कितनी बलवती भावना अभिव्यक्ति हुई है। ऐसे एक-दो नही, अनगिन राष्ट्रीय भावनाओं से सुवासित पुष्प हिन्दी काव्य की अमूल्य धरोहर है।

हिन्दी काव्य के आदिकाल से ही राष्ट्रीय धारा वीर रसात्मक काव्य के रूप में पल्लवित होती रही है। चाहे यह धारा जाति विशेष के गौरव को व्यक्त करने वाली रही हो किन्तु इससे हिन्दू-गौरव एवं संस्कृति के संरक्षण की दृष्टि से राष्ट्रीयता के स्वर पोषित हुए है। महाराणा प्रताप के चरित्र को लेकर अनेक कवियों ने मुक्त रूप से स्वर प्रदान किये हैं।

"अस लेगो अणदाग'''फूल प्रताप सी" महाकवि भूषण ने प्रताप के सन्दर्भ मे यशोगाथा के रूप में अनेक कवित्त व छप्पय आदि लिखे जो राष्ट्रीय विचार के पोषक हैं।

आधुनिक युग मे राष्ट्रीय विचारधारा का परिवर्तित रूप सामने आया। वीर रस की कविता के रूप मे जो राष्ट्रीय भाव व्यक्त हो रहे थे, वे जागरण एवं क्रान्ति

का स्वरूप लेकर प्रेरणा के मन्त्र बने।'''जब ब्रितानी सरकार ने इस देश पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया'''और आतंकपूर्ण राज्य अपना बिगुल बजाने लगा''' अंग्रेजों के हम गुलाम बन गये थे'''आकण्ठ डूबे हुए''' त्राण का नाम नहीं। ऐसे समय में हमारे साहित्य ने अलख जगायी—शब्दों के संस्पर्श ने राष्ट्रीयता के भावो को उद्दीप्त कर एक सामूहिक चेतना की लहर को उद्वेलित किया।

निःसन्देह साहित्यकार व कवि एक युगचिन्तक और दार्शनिक होता है। वह समाज के रूप का निर्धारण करता है, मीमांसा करता है, उसे अधिकारों के प्रति जागरूक करता है और न्याय दिलाने हेतु अथक प्रयास करता है। अस्तु, साहित्यकार समाज एवं राष्ट्र का सृजेता है। जो कार्य बड़ी-से-बड़ी ताकत नहीं कर सकती वह कार्य लेखनी करती है। कवि वाणी की पुकार उसे सदैव जागृत करती रहती है।

"अधिकार खोकर बैठना यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है॥

हर व्यक्ति में नया जोश, नया उत्साह एवं नयी स्फूर्ति का उदय हुआ। तिलक के "स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" के उद्घोष के साथ ही जन जागरण की लहर छा गयी।

इधर बंकिम बाबू के 'वन्दे मातरम' की धुन ने जैसे सदियों से सुप्त देश को जागृत कर दिया। यह स्वतन्त्रता संग्राम का प्रेरक बना रहा। जिस देश के पीछे न जाने कितनी माँ की गोद सूनी हो गयी, कितनी महिलाओं के माँग के सिन्दूर धुल गये, बंग भंग आन्दोलन के समय जो गीत धरती से आकाश तक गूँज उठा, बंगाल की खाड़ी से जिसकी लहरें इंगलिश चैनल पार कर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट पहुँच गयी ऐसे गीतकार, साहित्यकार, शब्द सृजेता को शत-शत नमन है।

स्व. इकबाल का 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' के स्वर गूँज उठे। समूचे भारत में राष्ट्रवाद का आन्दोलन बिखर गया तथा इस भावना से अनुप्राणित हो स्व. माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि कवियों ने सुषुप्त भावनाओं को उद्वेलित कर जागरण के स्वर मुखरित किये, जिससे देश दीर्घकालीन परतन्त्रता से मुक्त होकर स्वतन्त्रता का नव विहान जीने लगा एवं आदमी स्वदेश प्रेम की मधुर गन्ध में आनन्दित हो उठा।

माखनलाल चतुर्वेदी का सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीय विचारधारा से पूर्ण है। उन्होंने आजीवन राष्ट्रीयता के गान गाकर अपने आपको राष्ट्र का अमर सैनिक प्रमाणित किया है। श्री चतुर्वेदी की 'जवानी' कविता उत्साह का संचार करती है—

द्वार बलि का खोल चल भू डोल कर दे
एक हिम गिरि एक सिर का मोल कर दे
मसलकर अपने इरादों सी उठकर
दो हथेली है कि धरती गोल कर दे
रक्त है? या है नसों में क्षुद्र पानी
जाँच कर तू सीस देकर जवानी
प्राण मेरे साथ हैं उठ री जवानी

राष्ट्रीय धारा के कवियो मे बालकृष्ण शर्मा नवीन का स्वर प्रखर रूप में उभरकर आया है। 'चढ़ने दो बलि जीवन की' गीत गानेवाला कवि क्रान्ति से कहता है—

एक बार बस और नाच तू श्यामा।

हमारे राष्ट्रीय कवियो ने पुरातन युग-पुरुषों के चरित्रों के उदाहरण देकर जनता में विश्वास और आस्था जागृत करने का कार्य किया है—

सियाराम शरण गुप्त कहते हैं—

प्राप्त इसे दूर के अतल से, सत्य हरिश्चन्द्र की अटलता।
लब्ध इसे तारागृह मण्डल से,
श्री प्रह्लाद की अनन्त भक्ति समुज्ज्वलता॥

कवि निराला ने भी देव प्रतीको के माध्यम से राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति की है—

क्या यह वही देश है
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र
चिरकुमार भीष्म पताका ब्रह्मचर्य दीप्त
उड़ती है आज भी जहाँ के वायुमण्डल में
उज्ज्वल अधीर और चिर नवीन?
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत में
गीता गीत सिंहनाद
मर्मवाणी जीवन संग्राम की
सार्थक समन्वय ज्ञान कर्म भक्तियोग की।

इसी प्रकार 'जागो फिर एक बार' आदि काव्य धाराओं के द्वारा जन जागृति का सन्देश दिया है।

कविवर द्विवेदी का 'वन्दन के इन स्वरों में एक स्वर मेरा' बहुत लोकप्रिय हुआ है। कवि ने अनेक जागरण गीत गाये हैं—

जागो हिन्दू मुगल मराठे
जागो मेरे भारतवासी
जननी की जंजीरें बजती

जाग रहे कड़ियों के छाले
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी
जागो मेरे सोने वाले

कविवर श्री रामनरेश त्रिपाठी ने भी राष्ट्रीय विचारधारा से ओत-प्रोत काव्य का सृजन किया है—

अपनी पवित्र भारत भूमि के प्रति तादात्म्य कवि की इन पंक्तियों में मुखरित हुआ है—

करेंगे क्या लेकर अपवर्ग
हमारा भारत ही सुख स्वर्ग
नही है किसी लक्ष्य पर ध्यान
चाहिए केवल स्वप्न समान
इसे तज कर क्या तरु निर्मूल
करेंगें लेकर किंशुक फूल
प्रकृत पुरुषों का जीवन मूल
चाहिए केवल घर का रूल

कविवर गुप्त भी ध्वज वन्दन करते हुए पुकार उठे—

इस ध्वज पर जूझे जन का ध्यान जहाँ है आता
मस्तक ऊँचा होने पर भी मन भर-भर आता
धरती का धानी आँचल लहरे।
यह पुण्य पताका फहरे॥

श्री गुप्त की 'भारत भारती' राष्ट्रीय कृति है और इसी कारण इन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि से सम्मानित किया गया। राष्ट्रकवि ने इस कृति का सृजन कर भारत-वासियों को अपने अतीत के झरोखो में झाँककर अपनी ओजस्विता, गौरव-गरिमा को पुनः ग्रहण करने हेतु प्रेरित किया है।

कविवर पन्त ने जाग्रत भारत की वन्दना इस प्रकार की है—

स्वर्ग खण्ड ऋतु परिक्रमित
आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित
कुसुमित फल-द्रुम पिक कल-कूजित
उर्वर अभिभूत हे।
दस दिशि हरित, शस्य श्री हर्षित
पुलक राशिवत हे।
जन भारत हे जाग्रत भारत हे।

अस्तु, राष्ट्रकवि, भारतेन्दु, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, इकबाल, माखनलाल चतुर्वेदी, द्विवेदी, नवीन, दिनकर, निराला, पन्त, महादेवी,

हरिऔध, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द आदि समग्र शीर्षस्थ साहित्यकारों ने हिन्दी काव्य को राष्ट्रीयता की भावना का अवगाहन कराया है।

राजस्थान का कवि भी पीछे नहीं रहा। इस ग्रन्थ में जन जागरण एवं क्रान्ति का शंखनाद फूंकनेवाले विजयसिंह पथिक के राष्ट्रीय भावना युक्त गीत की ध्वनि से यह भूमि गूंज उठी थी।

श्री पथिक, केसरी सिंह बारहठ, माणिक्यलाल वर्मा, जयनारायण व्यास, गोकुल भाई भट्ट, हीरालाल शास्त्री, काशा बादल आदि ने जनता को नेतृत्व देने के साथ-साथ जन मन को उत्तेजित कर जूझते रहने की बलवती प्रेरणा दी है।

साहित्यकार/काव्यकार की सूक्ष्म दृष्टि सामयिक स्थितियों का चिन्तन कर सदैव राष्ट्रीयता के स्वर को अपने अन्तर में अभिव्यक्त करती रही है और यह अभिव्यक्ति यथा अवसर मुखरित होती रही है और होती रहेगी। इसमें मानव जीवन को शक्ति प्रदान करनेवाले साम्य, साधना, न्याय, स्वाधीनता आदि मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है।

अन्त में यही कहूँगी—

इस माटी के लिए जियेंगे
मिट जायेंगे बन अभिमान रे।
तन मन धन सब इसको अर्पित
मेरा देश महान रे॥

समकालीन हिन्दी कहानी का व्यक्तिवादी यथार्थ

सरला भूपेन्द्र

कहानी समसामयिक जीवन की सही पहचान प्रस्तुत करती है। व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार ने जब व्यक्ति को निराश कर दिया तो इसी निराशा ने विद्रोह का विकास किया। इस स्थिति में परम्परा का विद्रोह और आदर्शों का खण्डन व्यक्ति ने अपना लक्ष्य निर्धारित किया। इस प्रक्रिया मे व्यक्ति को खालिस निराशा हाथ लगी। उसमें अनास्था की प्रवृत्ति घर कर गयी और व्यक्ति अविश्वासी हो गया। इससे सम्बन्धों मे बदलाव आया और व्यक्ति स्व-केंद्रित हो गया। इस कारण व्यक्ति मे टूटन, अनास्था, भय, अविश्वास, निराशा, निरीश्वरवादिता, व्यक्तिवादिता, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, अर्थवादिता, नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा, चयन की स्वतन्त्रता प्रभृति प्रवृत्तियाँ विकसित हुई जिनकी अभिव्यक्ति समकालीन कहानी मे उपलब्ध है। इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर हम समकालीन कहानी की व्यक्तिवादी भंगिमा को समझ सकते है।

यह भंगिमा-परिवर्तन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शुरू हुआ था जो समकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियो में स्थान पाता गया। साठोत्तरी कहानी के प्रमुख लेखक हैं—भीष्म साहनी, ज्ञानरंजन, महीपसिंह, गिरिराज किशोर, दूधनाथसिंह, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, निरुपमा सेवती, कृष्णा सोबती, दीप्ति खण्डेलवाल, मणिका मोहिनी, मृदुला गर्ग, रमेश उपाध्याय, काशीनाथसिंह, गंगाप्रसाद विमल, महेन्द्र भल्ला, कामतानाथ, हेतु भारद्वाज, रामदरश मिश्र, सूर्यबाला, गोविन्द मिश्र, जगदीश चतुर्वेदी, बदीउज्जमा, से० रा० यात्री, रमेश बक्षी, मंजुल भगत, हिमांशु जोशी, मणिमधुकर, ईश्वरचन्दर, राजी सेठ, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, मोहरसिंह यादव, आलमशाह खान, स्वयप्रकाश शर्मा प्रभृति। इन समस्त कहानीकारों की कहानियों में समसामयिक परिवेश का जीवन्त तनाव अंकित है

और वह जितना जीवन्त है उतना ही व्यक्ति-अस्तित्व-चिन्ता-सम्पन्न भी।

व्यक्तिचेतना की एक प्रमुख प्रवृत्ति ईश्वर के प्रति अनास्था है जो हमें साठोत्तरी कहानी के अधिकांश कहानीकारों में प्राप्त होती है। ईश्वर है या नहीं इसका व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके स्पष्टीकरण में कहानी लेखिका सुधा अरोड़ा के कथन—"ईश्वर है या नहीं होता, मैं नहीं जानती कि वह है या मर चुका है क्योंकि मैं दार्शनिक नहीं हूँ। पर ईश्वर के आश्रित रहकर गतिशीलता को हम अवरुद्ध कर देते है और जीवन वहीं सपाट-समतल होते-होते रह जाता है" से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति ईश्वर को उन्नति के मार्ग मे बाधक स्वीकारता है। सुधा जी की समस्त कहानियों में ईश्वर के प्रति अनास्था एवं अनादर का ही भाव व्यक्त हुआ है।

इनकी कहानी 'बगैर तराशे हुए' का नायक अपनी प्रेमिका का इंतजार करते-करते माँ को याद करता है। उसे याद आता है कि उसकी माँ रामायण का पाठ किया करती थी और तत्पश्चात चिह्न के लिए लाल रिबन रख देती थी। उसी प्रकार का लाल रिबन जब वो अपनी डायरी में देखता है तो डायरी के पन्ने पर प्रेमिका का नाम लिख देता है। स्पष्ट है कि वो रामायण से अधिक महत्व अपनी प्रेमिका से सम्बन्धित डायरी को देता है। इस प्रक्रिया मे ईश्वर के प्रति घोर अनास्था का भाव व्यक्त हुआ है। ज्ञानरंजन की कहानियों मे भी ईश्वर के प्रति अनास्था तथा प्रतिकार की भावना मिलती है। उनकी 'सम्बन्ध' कहानी मे नायक का कथन—'कई बार मुझे ईश्वर को भद्दी गालियाँ देने का ताव भी आया लेकिन यह सोचकर रह गया कि संसार के अधिकांश लोगों को अब ईश्वर से कोई प्रयोजन नहीं है। (फेन्स के इधर-उधर : ज्ञानरंजन, पृष्ठ 118)

नीत्शेयी आवाज मे ईश्वर की मृत्यु की घोषणा उस काल की कहानी मे कई-कई बार हुई। इसी प्रकार गिरिराज किशोर की कहानियाँ 'एक ईश्वर की मौत' एवं 'पोली सड़क' में भी ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव व्यक्त हुआ है। 'एक ईश्वर की मौत' कहानी का नायक हिन्दू अनाथालय छोड़कर आता है तो अधीक्षक उसको विदा देते हुए कहता है—"ईश्वर तुम्हारी मदद करेंगे।" अधीक्षक की इस बात ने उसे विश्वास दिलाया कि ईश्वर सबकी रक्षा करता है परन्तु जीवन मे ईश्वर ने कभी उसका साथ न दिया। जीवन से संघर्ष करता हुआ वह सिर्फ एक चपरासी बन सका। आज वह भी हाथ से निकल गयी। उसका विवाह उस लड़की से न हुआ जो उसे पसन्द थी। जिससे उसका विवाह हुआ उससे भी तलाक हो गया और ऐसी स्थिति में वह ईश्वर के प्रति उपेक्षा का भाव लिए मुस्करा पड़ा—'उस रोज फिर मैंने उस बात पर विश्वास करना चाहा परन्तु मैं उस पर हँस भर सका।...मेरे जो बिना धर्म का एक ईश्वर था'''वह धीरे-धीरे मरता गया'''और अब बिल्कुल मर गया है।' (चार मोती बे आब . गिरिराज किशोर पृष्ठ 33)

ललित शुक्ल की कहानी 'बीजी' की संध्या पी. एम. टी. की परीक्षा में फेल होने पर देवी को दानवी घोषित करती हुई कहती है—'यह देवी है; तो मैं तो नहीं मानती। मेरे लिए इन्होने दानवी का रोल अदा किया है। मैं चूर-चूर कर डालूँगी।' ('कहानी आजकल मे संकलित : ललित शुक्ल : 'बीजी', पृष्ठ 302) और उसने सगमरमर की प्रतिमा को चूर-चूर कर डाला। स्पष्टत: व्यक्ति का ईश्वर को गालियाँ देना, उसे मृत घोषित करना व्यक्ति मे व्याप्त अनास्था की प्रवृति को व्यक्त करता है।

सामान्यतया साठोत्तरी कहानी के समस्त कहानीकारों ने प्राचीन रूढ़ियों, मूल्यों और मान्यताओ का विरोध किया है और साथ ही नवीन मूल्यो का समर्थन किया है। मूल्यों का आधार मानवीय स्वतन्त्रता ही है। यह प्रभाव व्यक्तिवादी चेतना का ही परिणाम है। आज पारिवारिक सम्बन्ध टूट रहे हैं, परम्पराएं एवं मान्यताएं बदलती जा रही है। यही नही अपितु सम्पूर्ण व्यवस्था बदलती जा रही है। एतद् सन्दर्भ मे मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', 'मैं हार गई', 'त्रिशंकू', बदीउज्जमा की 'पुल टूटते हुए', मेहरुन्निसा परवेज की 'गलत पुरुष', ज्योत्स्ना मिलन की 'चौख के आर-पार', मजुल भगत की 'गुलमोहर के गुच्छे' तथा 'कितना छोटा सफर' जैसी कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

इन कहानियों की नायिकाए परम्पराओं के प्रति मोह-ग्रस्त नही है वरन् उनका अपमान कर उन्हे अस्वीकार करती हैं। इस अस्वीकार में वे बड़े ही द्वन्द्व की स्थिति से गुजरती है। 'आग' कहानी की नायिका अपने अतीत को भुला देना चाहती है क्योंकि वह निरर्थक है इसलिए वह सोचती है—'आज वह उन्हें जला डालेगी, उसने सोचा, जब किसी निर्णय के बारे मे वह देर तक सोचती है, निर्णय बदल जाता है। डायरियाँ पड़ी रहती हैं, तो उसे लगता है, बीता हुआ सब कुछ जिंदा है (बगैर तराशे हुए, सुधा अरोड़ा, पृष्ठ 142) अन्त मे द्वन्द्वात्मक स्थिति से गुजरने के बाद वह डायरियाँ नष्ट कर देती है : इससे अहसास होता है कि डायरियाँ नष्ट नही की गयी, अपना अतीत नष्ट नहीं किया गया बल्कि वे परम्पराएं जो निरर्थक हैं उन्हे नष्ट किया गया है।

रामदरश मिश्र की कहानियो मे भी प्राचीन मूल्यों के प्रति तीव्र विद्रोह दिखाई पड़ता है। 'मुक्ति' नामक कहानी में टाइपिस्ट पिता अपनी पुत्रियो का विवाह न कर आर्थिक स्तर पर सम्पन्नता प्राप्त करने, मकान बनाने आदि कार्यों के लिए उनसे नौकरी करवाता है। चन्दा नामक लड़की इसका विद्रोह कर किसी युवक के साथ घर से भाग जाती है, 'तो एक व्यक्ति मशीन का पुर्जा बनने से बच गया...' कथन के माध्यम से लड़की के भाग जाने का समर्थन करके नवीन मूल्यो को स्वीकृति प्रदान करने के माध्यम से चेतना को अभिव्यक्ति मिली है। मणिमा मोहिनी की कहानी 'तलाश' में नायिका का उस मार्ग की तलाश करना जो उसे वैवाहिक

जीवन से छुटकारा दे सके, नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा करना ही है।

निरुपमा सेवती की कहानी 'सब में से एक' की नायिका का कथन 'बहुत पहले ही मैंने पूरी तरह इन्कार कर दिया था और पिताजी ने नाराज होकर भैया के पास मेरा खर्च तक भेजना बन्द कर दिया। महीनों बीत गये हैं मैंने माँ बाप की सूरत नहीं देखी, ना ही अपने शहर गयी।' (कहानी आजकल मे संकलित, पृष्ठ 32) नवीन मूल्यों के प्रति आस्था को ही अभिव्यक्त करता है। आज कोई भी माँ-बाप अपनी इच्छा को बच्चों पर लाद नहीं सकते अन्यथा बच्चे उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास मे बाधा जान अलग हो जाते हैं क्योंकि उनका अपना भी कुछ अस्तित्व है। 'आज तक हम सब भाई एक-एक करके यहाँ से चले गए तो फिर लौट कर आये क्या? देखो न कैसी घुटन सी हो रही है? ऐसा लगता है जैसे यहाँ एक साँचा हो जो हमें अपने अनुरूप ढालने के लिए उद्यत हो। एक मनुष्य की महत्वाकांक्षा मुँह बाए हमें निगल लेना चाहती हो, जैसे हमारी अपनी आकांक्षा, आशाएं ही न हो, जैसे हम कोई अस्तित्व ही न रखते हों, जैसे हम गीली मिट्टी हो जिसे अपनी आकांक्षा के चाक पर चढ़ाकर कोई अपने अनुकूल ढाल लेना चाहता हो।' (कर्जा : आर. श्यामसुन्दर, उद्धृत : कहानी आजकल, पृष्ठ 146)

चन्द्रप्रकाश पाण्डेय की कहानी 'जंग' में भी पालतू पक्षी मारने पर पिता पुत्र से बन्दूक छीन लेता है। उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप—"समत दूसरे दिन शहर चला गया। वहाँ कानून पढ़ रहा था। काफी दिनों तक लौटकर नहीं आया। जिस जंगल में चिड़ियों के शिकार पर ही प्रतिबन्ध हो वहाँ लौटने का क्या सवाल है" " यहाँ प्रतिबन्धों के अस्वीकार में चेतना की व्यक्तिवादी भंगिमा अभिव्यक्ति पा रही है। ऐसा ही अस्वीकार बोध कराने वाली कहानियाँ 'इस शहर में' (आशीष सिन्हा), 'भेड़िये' (शिवप्रसाद सिंह), 'जमीन से हटकर' (हेतु भारद्वाज), 'सपाट चेहरे वाला आदमी' (दूधनाथ सिंह), 'दो कहानियों के बीच' (शशिप्रभा), 'कच्चे मकान' (निरुपमा सेवती) हैं। इन कहानीकारो के अस्वीकार मे इस बात की स्वीकारोक्ति है कि "नये मनुष्य के अस्वीकरण को फायड के मनुष्य के नैसर्गिक असामाजिकता, उसके स्वभावों के अपरिवर्तनीय अहंवाद के सिद्धान्त ने भी प्रेरित किया है।" (समाजवादी समाज मे व्यक्ति : ग. स्मिर्नोव, पृ. 82) इसी प्रकार मनहर चौहान की कहानी 'विपरीतीकरण' में पीढ़ियों के संघर्ष और नयी पीढ़ी की निजता के आधार पर व्यक्तिचेतना को प्रतिष्ठित किया गया है।

आज व्यक्ति व्यक्तिगत सम्बन्धो मे अर्थ को अधिक महत्त्व दे रहा है। आर्थिक स्थिति की विषमता ने समस्त परम्परागत मूल्यो को तोड़कर रख दिया है। 'रबरबैण्ड' कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है, जहाँ घर का खर्च एक मात्र पुत्र चलाता है। उसके विदेश जाने के निर्णय से वृद्धा माँ के परम्परागत मूल्य, उसकी परम्परागत दृष्टि एकदम बदल जाती है। वह माँ जो कभी बेटी का नौकरी

करना पाप समझती थी स्वयं उसे नौकरी करने के लिए कहती है। इतना ही नहीं आज पति-पत्नी सम्बन्ध का आधार भी अर्थ है। आज की नारी अबला नहीं, जो पुरुष का अधिपत्य स्वीकार कर ले। वह आत्मनिर्भर है इसलिए वह अपने-आपको पुरुष से कम नहीं समझती। गिरिराज किशोर की कहानी 'फ्राक वाला घोड़ा निकर वाला साईस' की रीता का कथन—"आप पुरुष लोग समझते हैं, जो कुछ आप कमाकर लाते हैं उसके कारण हम लोग आपका सम्मान करते हैं और इसी कारण आप लोग अपने आपको स्वतन्त्र रख पाने में समर्थ हैं। लेकिन आज व्यक्तिगत सम्बन्धों का भी आर्थिक महत्व अधिक है। अगर मैं आपसे छः गुना कमाती हूँ तो छः गुना ही बड़ी भी हूँ।" (पेपरवेट : गिरिराज किशोर : पृष्ठ 101)

इतना ही नहीं अर्थाभाव के कारण पत्नी अपने पति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के साथ भी चली जाती है। शैलेश मटियानी की कहानी 'उठाईगीर' की गुलाबो अपने पति भोला को इसीलिए छोड़ जाती है। इस बात की पुष्टि भोला के निम्नलिखित कथन से होती है—"सो तो रांड बैठ चुकी। खैर, इन्तजार करती मेरा, तो भी भूखों मर चुकी होती। मुझसे तो छूटना था, उसे मुर्दा छूटने से जिन्दा छूटना भला।" (उठाईगीर : शैलेश मटियानी, संकलित—कहानी आजकल, पृष्ठ 23) व्यक्ति को चाहे कितने ही संघर्षों का सामना करना पड़े; चाहे वह भूखा मर रहा हो मगर वह अपनी स्वतन्त्रता पर चोट कभी नहीं सह सकता। किसी के अहसान तले दबना नहीं चाहता क्योंकि वह किसी की गुलामी स्वीकार नहीं कर सकता। स्वतन्त्र रहकर वह भूखा ही प्रसन्न है।...."तुम ज्यादा-से-ज्यादा चार सौ तक की नौकरी का इन्तजाम कर दोगे, फिर ? फिर तो तुम्हारे अहसान से इतना दबा रहूँगा कि कभी भी अपनी जुड़े हुए हाथ खुल नहीं पाएँगे।" (अलेक्लेण्डर : प्रवणकुमार वन्धोपाध्याय, संकलित—कहानी आजकल, पृष्ठ 127) यह कह कर कहानी का नायक नौकरी नहीं स्वीकारता क्योंकि स्वतन्त्रता ही उसका मूल्य है।

सुरेश सिन्हा ने भी सम्बन्धों के बदलाव के माध्यम से व्यक्ति चेतना को अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानी 'रूढ़ियों से उतरता सूरज' में इसे स्पष्ट किया गया गया है—"शेखर ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा, वे 'भाई बहन नहीं हैं'''सम्बन्ध तो मानने से होता है न, शब्दों से नहीं, मैं केवल शब्दों के सम्बन्ध को मानने को तैयार नहीं कि वह मेरी बहन है, वह मेरा भाई है,'''रिश्ते तो मन के होते हैं'''सम्बन्धों के लिए विश्वास जरूरी होता है और शताब्दियों से चले आ रहे ये कोढ़-मानदण्ड नहीं मानेंगे।" (सीढ़ियों से उतरता सूरज : सिन्हा, संकलित—सारिका, मार्च 1969, पृष्ठ 75) परम्परागत मूल्यों के प्रति बदली हुई जीवन-दृष्टि महेन्द्र भल्ला 'एक पति के नोट्स' (लम्बी कहानी) रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी बीवी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', शिवप्रसाद की 'कर्मनाशा की हार', ममता

जीवन से छुटकारा दे सके, नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा करना ही है।

निरुपमा सेवती की कहानी 'सब में से एक' की नायिका का कथन 'बहुत पहले ही मैंने पूरी तरह इन्कार कर दिया था और पिताजी ने नाराज होकर भैया के पास मेरा खर्च तक भेजना बन्द कर दिया। महीनों बीत गये हैं मैंने माँ बाप की सूरत नहीं देखी, ना ही अपने शहर गयी।' (कहानी आजकल में संकलित, पृष्ठ 32) नवीन मूल्यों के प्रति आस्था को ही अभिव्यक्त करता है। आज कोई भी माँ-बाप अपनी इच्छा को बच्चों पर लाद नहीं सकते अन्यथा बच्चे उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास में बाधा जान अलग हो जाते हैं क्योंकि उनका अपना भी कुछ अस्तित्व है। 'आज तक हम सब भाई एक-एक करके यहाँ से चले गए, तो फिर लौट कर आये क्या ? देखो न कैसी घुटन सी हो रही है ? ऐसा लगता है जैसे यहाँ एक साँचा हो जो हमें अपने अनुरूप ढालने के लिए उद्यत हो। एक मनुष्य की महत्वाकांक्षा मुँह बाए हमें निगल लेना चाहती हो, जैसे हमारी अपनी आकांक्षा, आशाएँ ही न हों, जैसे हम कोई अस्तित्व ही न रखते हों, जैसे हम गीली मिट्टी हों जिसे अपनी आकांक्षा के चाक पर चढ़ाकर कोई अपने अनुकूल काम लेना चाहता हो। (कर्जा : आर. श्यामसुन्दर, उद्धृत : कहानी आजकल, पृष्ठ 146)

चन्द्रप्रकाश पाण्डेय की कहानी 'जंग' में भी पालतू पक्षी मारने पर पिता पुत्र से बन्दूक छीन लेता है। उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप—"सनत दूसरे दिन शहर चला गया। वहाँ कानून पढ़ रहा था। काफी दिनों तक लौटकर नहीं आया। जिस जंगल में चिड़ियों के शिकार पर ही प्रतिबन्ध हो वहाँ लौटने का क्या सवाल है" " यहाँ प्रतिबन्धों के अस्वीकार में चेतना की व्यक्तिवादी भंगिमा अभिव्यक्ति पा रही है। ऐसा ही अस्वीकार बोध कराने वाली कहानियाँ 'इस शहर में' (आशीष सिन्हा), 'भेड़िये' (शिवप्रसाद सिंह), 'जमीन से हटकर' (हेतु भारद्वाज), 'सपाट चेहरे वाला आदमी' (दूधनाथ सिंह), 'दो कहानियों के बीच' (शशिप्रभा), 'कच्चे मकान' (निरुपमा सेवती) हैं। इन कहानीकारों के अस्वीकार में इस बात की स्वीकारोक्ति है कि "नये मनुष्य के अस्वीकरण को फ्रायड के मनुष्य के नैसर्गिक असामाजिकता, उसके स्वभावों के अपरिवर्तनीय अहवाद के सिद्धान्त ने भी प्रेरित किया है।" (समाजवादी समाज में व्यक्ति : म. स्मिर्नोव, पृ. 82) इसी प्रकार मनहर चौहान की कहानी 'विपरीतीकरण' में पीढ़ियों के संघर्ष और नयी पीढ़ी की निजता के आधार पर व्यक्तिचेतना को प्रतिष्ठित किया गया है।

आज व्यक्ति व्यक्तिगत सम्बन्धों में अर्थ को अधिक महत्त्व दे रहा है। आर्थिक स्थिति की विषमता ने समस्त परम्परागत मूल्यों को तोड़कर रख दिया है। 'रबरबैण्ड' कहानी में एक मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है, जहाँ घर का खर्च एक मात्र पुत्र चलाता है। उसके विदेश जाने के निर्णय से वृद्धा माँ के परम्परागत मूल्य, उसकी परम्परागत दृष्टि एकदम बदल जाती है। वह माँ जो कभी बेटी का नौकरी

करना पाप समझती थी स्वयं उसे नौकरी करने के लिए कहती है। इतना ही नहीं आज पति-पत्नी सम्बन्ध का आधार भी अर्थ है। आज की नारी अबला नहीं, जो पुरुष का अधिपत्य स्वीकार कर ले। वह आत्मनिर्भर है इसलिए वह अपने-आपको पुरुष से कम नहीं समझती। गिरिराज किशोर की कहानी 'फ्राक वाला घोड़ा निकर वाला साईस' की रीता का कथन—"आप पुरुष लोग समझते हैं, जो कुछ आप कमाकर लाते हैं उसके कारण हम लोग आपका सम्मान करते हैं और इसी कारण आप लोग अपने आपको स्वतन्त्र रख पाने में समर्थ हैं। लेकिन आज व्यक्ति-गत सम्बन्धों का भी आर्थिक महत्व अधिक है। अगर मैं आपसे छः गुना कमाती हूँ तो छः गुना ही बड़ी भी हूँ।" (पेपरवेट : गिरिराज किशोर : पृष्ठ 101)

इतना ही नहीं अर्थाभाव के कारण पत्नी अपने पति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के साथ भी चली जाती है। शैलेश मटियानी की कहानी 'उठाईगीर' की गुलाबो अपने पति भोला को इसीलिए छोड़ जाती है। इस बात की पुष्टि भोला के निम्नलिखित कथन से होती है—"सो तो राँड बैठ चुकी। खैर, इन्तजार करती मेरा, तो भी भूखों मर चुकी होती। मुझसे तो छूटना था, उसे मुर्दा छूटने से जिन्दा छूटना भला।" (उठाईगीर : शैलेश मटियानी, संकलित—कहानी आजकल, पृष्ठ 23) व्यक्ति को चाहे कितने ही संघर्षों का सामना करना पड़े, चाहे वह भूखा मर रहा हो मगर वह अपनी स्वतन्त्रता पर चोट कभी नहीं सह सकता। किसी के अहसान तले दबना नहीं चाहता क्योंकि वह किसी की गुलामी स्वीकार नहीं कर सकता। स्वतन्त्र रहकर वह भूखा ही प्रसन्न है।...."तुम ज्यादा-से-ज्यादा चार सौ तक की नौकरी का इन्तजाम कर दोगे, फिर? फिर तो तुम्हारे अहसान से इतना दबा रहूँगा कि कभी भी अपनी जुड़े हुए हाथ खुल नहीं पाएँगे।" (अलेक्लेण्डर : प्रवणकुमार बन्द्योपाध्याय, संकलित—कहानी आजकल, पृष्ठ 127) यह कह कर कहानी का नायक नौकरी नहीं स्वीकारता क्योंकि स्वतन्त्रता ही उसका मूल्य है।

सुरेश सिन्हा ने भी सम्बन्धों के बदलाव के माध्यम से व्यक्ति चेतना को अभि-व्यक्ति दी है। उनकी कहानी 'सीढ़ियों से उतरता सूरज' में इसे स्पष्ट किया गया गया है—"शेखर ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा, वे 'भाई बहन नहीं हैं'...सम्बन्ध तो मानने से होता है न, शब्दों से नहीं, मैं केवल शब्दों के सम्बन्ध को मानने को तैयार नहीं कि वह मेरी बहन है, वह मेरा भाई है,...रिश्ते तो मन के होते हैं...सम्बन्धों के लिए विश्वास जरूरी होता है और शताब्दियों से चले आ रहे मे कोढ़-मानदण्ड नहीं मानेंगे।" (सीढ़ियों से उतरता सूरज : सिन्हा, संकलित—सारिका, मार्च 1969, पृष्ठ 75) परम्परागत मूल्यों के प्रति बदली हुई जीवन-दृष्टि महेन्द्र भल्ला 'एक पति के नोट्स' (लम्बी कहानी) रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी बीवी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', शिवप्रसाद की 'कर्मनाशा की हार', ममता

कालिया की 'एक अदद औरत', स्वयं प्रकाश की 'वर्दे' जैसी कहानियों में भी रेखांकित की जा सकती है।

आज व्यक्ति वैयक्तिक धरातल पर ही सोच-विचार करता है। जो कुछ भी प्राप्य है वह सिर्फ उसका है, निजी है। उसमे से किसी और को भी कुछ प्राप्त हो, यह वह कभी स्वीकार नही करता। महीपसिंह की कहानी 'युद्धमन' मे कोहली साहब का कथन इस स्थिति को स्पष्ट करता है—"दल्हें लगा दो ये सब लोग उनके आगत को बांट लेंगे, नोंच-खसोट लेंगे। वह आगत जो सिर्फ उनका है, एक मात्र उनका। जिसमे वे किसी भी हिस्सेदारी नही चाहते।" (घिराव : महीपसिंह, पृष्ठ 71) हिस्सेदारी चाहना तो दूर की बात है आज व्यक्ति अपने जीवन में किसी का हस्तक्षेप भी पसन्द नही करता, वह स्वतन्त्र रहना चाहता है। कुलभूषण की कहानी 'अंजू और राजीव' मे अंजू के कथन से यह स्पष्ट है—"...समाज का हस्तक्षेप किसी प्रकार भी न होने दे अपने जीवन में। क्योंकि हस्तक्षेप को मंजूर करना गुलामी की निशानी है, जो आजाद इन्सान कभी-मजूर नही कर सकता।" (अंजू और राजीव : कुलभूषण, सकलित—कहानी आजकल, पृष्ठ 318)

व्यक्ति जब स्व-केन्द्रित होने लगता है, तो वह अपने परिवार मे ही अजनबी बन जाता। एकाकीपन का यह अहसास उसे घुट-घुटकर जीने पर विवश कर देता है। 'रक्तपात' कहानी का नायक अपने घर जाता है जहाँ उसकी छोड़ी हुई पत्नी और माँ है। माँ बेटे की चिन्ता मे अब पागल ही चुकी है। पत्नी पुनः पति का सामीप्य पाना चाहती है पर वह कुछ नही कर पाती। ऐसी स्थिति मे नायक को अहसास होता है कि "अपने घर मे वह एक अतिथि है और अपने परिचित कोनों, घरों, घरों की दीवारो ताकों, सीढियों को नही छू सकता। हर कही एक बाध्यता है.... एक न जाने कैसी विवश खिन्नता।" ('सपाट चेहरे वाला आदमी' नाम सग्रह का प्रथम फ्लैप : दूधनाथ सिंह, पृष्ठ 122) समकालीन हिन्दी कहानी मे अलगाव की व्यक्तिवादी मुद्रा को चित्रित करने वालो मे प्रमुख कहानीकार निर्मल वर्मा, रामकुमार, शिवप्रसाद, गोविन्द मिश्र, राजी सेठ, पानू खोलिया, रमेश बक्षी, मणि मधुकर हैं। एकाकीपन के दर्द की जीवन्त अभिव्यक्ति को युवा कहानीकार सत्यनारायण की कहानियो मे भी देखा जा सकता है।

व्यक्ति चेतना ने आज व्यक्ति को स्वतन्त्रता का महत्त्व बखूबी समझा दिया है आज व्यक्ति स्वतन्त्रता में विश्वास रखता है। वह कोई भी निर्णय स्वय लेना चाहता है और उस पर दृढ़ रहना चाहता है, परिणाम की चिन्ता वह नही करता क्योंकि व्यक्ति का यह मानना है कि यदि परिणाम पर विचार किया जाये तो वह कभी कुछ नही कर पायेगा। इसी सन्दर्भ मे अन्विता अग्रवाल की कहानी 'फड़फड़ाहट' की नायिका सोचती है—"यदि उसे रिवाल्वर मिल जाये, तो सच उसका हाथ एक क्षण को भी नही कांपे। फिर उसका परिणाम भले ही जो कुछ हो। वह

होना देखना चाहती है। क्या होगा परिणाम के बारे में सोचकर? कम-से-कम वह तो हो पायेगा जो वह चाहती है। परिणाम देखती रहेगी तो कभी कुछ नहीं कर पायेगी।" (फड़फड़ाहट : अन्विता अग्रवाल, संकलित—धर्मयुग-13 अक्टूबर, 1969, पृष्ठ 28) स्वतन्त्र निर्णय के क्रियान्वयन के पश्चात् आत्मा कितनी सन्तुष्ट होती है यह इसी कहानी की नायिका की स्थिति से स्पष्ट है—"दूसरे ही क्षण उसे लगा कि उसने जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है। उसने वह कहा है जो कहना चाहती थी। बिना चाहे कुछ नहीं किया है। उन्हें बुरा लगता तो लगा करे।" (फड़फड़ाहट : अन्विता अग्रवाल, संकलित-धर्मयुग 13 अक्टूबर, 1969,

यिका

। पर

दीश

ाता है तो

है। इसी

" वह

अपना फैसला नहीं बदलेगा और किसी को अपने अन्दर नहीं आने देगा कि उसका स्वत्व ही जाता रहे।" (दूसरे के पैर : श्रीकान्त वर्मा, संकलित—अकहानी, सम्पादक द्वय : श्याम मोहन श्रीवास्तव, सुरेन्द्र अरोड़ा) और इस निर्णय के पश्चात उसे लगता है कि—"अब वह बिल्कुल स्वाधीन है। उसने अनुभव किया कि उसके अन्दर एक भयंकर आत्मविश्वास जाग उठा है और वह समर्थ है।" (दूसरे के पैर : श्रीकान्त वर्मा, संकलित-अकहानी, सम्पादक द्वय श्याम मोहन श्रीवास्तव, सुरेन्द्र अरोड़ा, पृष्ठ 57) स्पष्टतः व्यक्ति अपने स्वतन्त्र निर्णयों द्वारा अपने अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करना चाहता है। इसलिए वह समूह में अपने स्व को समाहित करना नहीं चाहता। इसी कारण सुरेश सिन्हा की कहानी 'एक अपरिचित दायरा' का मदन सोचता है—"वह घर छोड़कर चला आयेगा, पर अपने अस्तित्व को खण्डित नहीं होने देगा। इस बड़े शून्य में वह अपना विलय नहीं होने देगा, उसका स्वत्व अर्थ रखता है।" (कई आवाजों के बीच : सुरेश सिन्हा : पृष्ठ 38)।

इन सबके अतिरिक्त साठोत्तरी कहानी में व्यक्ति चेतना की उपलब्धि के रूप में रवीन्द्रनाथ कालिया की 'डरी हुई औरत', 'बड़े शहर का आदमी', 'बेशर्मी', तथा 'नौ साल छोटी पत्नी', ममता कालिया की 'अपत्नी', रमेश उपाध्याय की 'तनाव', काशीनाथ सिंह की 'आखिरी रात', 'सुख' और 'वेटिंग रूम' आदि कहानियों में स्थापित रूढ़ियों और मान्यताओं के प्रति एक नये दृष्टिकोण का भाव है। मानवीय चेतना को नकारने वाली व्यवस्था के प्रति विद्रोह का भाव है जो व्यक्ति-चेतना के कारण ही आया है। आज भी कहानी में व्यक्ति चेतना हमें कभी सम्बन्धों

के नवीन रूप मे तो कभी सम्बन्धहीनता में प्राप्त होती है।

साठोत्तरी कहानीकारो ने नयी कहानी के शीर्षक के नीचे व्यक्ति और समाज को आमने-सामने रखकर व्यक्ति चेतना को यथार्थ रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया। इन कहानियो मे व्यक्ति का आत्मबोध एवं परिवेश दोनों ही जीवन्त जान पडते हैं। समसामयिक कहानी में सामाजिक परिवेश के सम्बन्ध में व्यक्तिचेतना को और अधिक प्रखर रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास हो रहा है। आज के कहानीकार व्यक्ति चेतना को उन सब तहों तक जाना चाहते हैं जो व्यक्ति चेतना को पूर्ण सार्थकता प्रदान कर सकती हैं तथा व्यक्ति और समाज के स्वस्थतम रिश्ते निर्मित कर सकती है। जब भी किसी कहानी में आचरण की स्वच्छता धूमिल होने लगती है तो व्यक्तिवादी भंगिमा का रुग्ण रूप सामने आने लगता है। हिंदी की नयी और समकालीन कहानी मे ऐसा अनेक बार हुआ हैऔर इतस्ततः जारी है। इसलिए कहानीकार को यह मद्दे नजर रखना ही होगा कि "आदमी का व्यक्तित्व अनिवार्यतः सामाजिक सम्पर्कों और सामाजिक कार्यकलाप की प्रक्रिया मे निर्मित होता है और वह अच्छा हो या बुरा, अति प्रतिभाशाली हो या साधारण मर्त्य, वह सदा अपने आसपास के जीवन को अपने आत्मसात किये एक व्यक्तित्व और इसीलिए व्यक्तित्व बना रहता है। और इसका विवेचन हर कोई कर सकता है कि वह किसी तरह का व्यक्ति है।" (समाजवादी समाज में व्यक्ति : ग. स्मिर्नोव, पृ. 17)

इस प्रकार समकालीन कहानीकार जीवन के साथ कहानी को सम्बद्ध करके चल रहा है। जीवन की सूक्ष्म पहचान और संघर्ष की आन्तरिक पकड़ के भीतर रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', ममता कालिया की 'एक अदद औरत' गिरिराज किशोर की 'पेपरवेट', दामोदर सदन की 'श्मशान', पृथ्वीराज मोंगा की 'वह कोई एक', राजी सेठ की 'तीसरी हथेली', बदीउज्जमा की 'पुल टूटते हुए' और 'चौथा ब्राह्मण', शिवप्रसाद सिंह की 'भेड़िये', से. रा. यात्री की 'केवल पिता', ज्ञानरंजन की 'आत्महत्या', 'पिता' इत्यादि कहानियाँ बदली हुई दिशा और परिवर्तित प्रकृति की कहानियाँ हैं। आज की कहानी व्यक्ति यथार्थ के निरन्तर तल्ख होते जा रहे अनुभव के करीब आती जा रही है। इस धारा के लेखकों की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

रचनात्मक काम

□ गणेश तारे

कई दिनों से सोच रहा था कि कुछ रचनात्मक लिखूं, सो देश के सेवार्थ मेरी रचनात्मक रचना प्रस्तुत है। अब रचनात्मक का मतलब तो आप समझते ही हैं। रचनात्मक याने रचनात्मक...समथिंग कंस्ट्रक्टिव...नॉट डेस्ट्रक्टिव। अब कंस्ट्रक्टिव भी नहीं समझते क्या? लगता है चुंगी के स्कूल में पढ़े हो।

मैं समझता हूँ कि प्रत्येक लेखक और कवि को कुछ ऐसा लिखना चाहिए कि देश का भला हो, देश पर जो सदैव विदेशी ताकतों का दबाव बना रहता है वह कम हो। यह तभी हो सकेगा जब देश ताकतवर होगा। देश तभी ताकतवर होगा जब सरकार ताकतवर होगी। अतः सरकार के हाथ मजबूत करना हमारा प्रथम पुनीत कर्त्तव्य है। इस 'शाश्वत चिन्तन' को प्रारम्भ करने से पूर्व मैं मेरे और सरकार के पवित्र एवं घनिष्ठ सम्बन्ध को स्पष्ट कर दूं ताकि 'मिसअण्डरस्टेण्डिंग' न हो, यदि आप समझते है कि मैं सरकारी कर्मचारी हूँ तो आप त्रुटि पर हैं। सत्य यह है कि मैं भी आप जैसा एक समझदार, सजग नागरिक हूँ जो हर चुनाव में सुप्त अवस्था से जागकर वोट देता हूँ और सरकार बनाता हूँ। मेरा दावा है कि मैं जिसे वोट देता हूँ वही सरकार बनाता है। मैं जानता हूँ कि मैं किसे वोट देता हूँ, यह आप जान ही नहीं सकते। अतः यह मानना ही पड़ेगा कि मैं ही सरकार बनाता हूँ...अर्थात् 'गवर्नमेण्ट मेकर' हूँ। चूंकि सरकार मेरी है अतः उससे कोई विरोध सम्भव नहीं है, अब विरोधी आये दिन चिल्लाते रहते हैं, 'सरकार ने किया ही क्या है?' तो भंइये सीधी-सीधी बात है—सरकार ही माई बाप है, सरकार ही पालनहारी है। सरकार ने हमें पानी दिया, सरकार ने बिजली दी। अब 'वाटर वर्क्स' और 'इलेक्ट्रीसिटी बोर्ड' तो सरकार के मानोगे कि वे भी विरोधियों की बपौती है? सरकार ने हमें फ्री में हवा दी, उसका बापड़ी एक पैसा भी नहीं लेती। सरकार ने फैक्ट्री चलाने

वालों को लाइसेन्स दिया। फैक्ट्री वालों ने प्रदूषण किया। सरकार ने तब पर्यावरण का अर्थ समझाया। पर्यावरण समझने वालों को पैसा दिया, पैसे ने सेमीनार करवाई। सरकार ने फोटू खींचकर टी० वी० पर दिखाई। इतना सब सरकार ने किया और विरोधी पूछते हैं सरकार ने क्या किया? मैं पूछता हूँ विरोधियों ने अब तक क्या किया? नारे लगाये, यूनियनें बनवायी, हड़ताल करवायी, उत्पादकता कम करवाई, सरकारी कामों में अड़ंगे लगाये, जगह-जगह अशान्ति फैलायी, लोगों की भावनाएँ भड़काई। विरोधी ध्यान रखें, जगह-जगह कलेक्ट्रेट पर जाकर वे नारे लगाते हैं, वह कलेक्ट्रेट किसने खुलवायी?...सरकार ने। अब सरकार कलेक्टर ही नियुक्त नहीं करती तो ये विरोधी कहाँ नारे लगाते, कहाँ ज्ञापन देते, कहाँ धरना देते? हो जाती न सब दुकानदारी ठप्प! अजी, कलेक्ट्रेट तो दूर जिन सड़कों पर ये विरोधी जुलूस निकालते हैं, वे सड़कें सरकार ही तो बनवाती है। उसमें जगह-जगह कुछ स्पीड ब्रेकर रखवाती है कि वाहन वाले कुछ सम्हल कर चलें। चाहे जिस वाहन से टकराकर एक्सीडेंट न करें, असावधानी से खड्‌डे में ही गिरें और भविष्य में पुनः खड्‌डे में गिरने के लिए बचें। अतः सरकार मरने वाले को जीने की प्रेरणा देती है। फिर भी कोई मरने पर ही उतारू हो तो सरकार ने उसको भी बचने का इन्तजाम कर छोड़ा है। जगह-जगह अस्पताल खोल-रखे है। डाक्टर-नर्सें रख छोड़ी हैं। अस्पताल में दवाई न मिलें तो प्रायवेट दवाइयों की दुकानें खोलने की परमीशन दे रखी है।

आगे सुनो, सरकार ने जगह-जगह स्कूल खुलवाये और कहा पढ़ो मेरे लाल। पढ़ लिखकर विद्वान बनो और पत्रिकाओं-अखबारों में लिखो। किन्तु लोगों ने पढ़ लिखकर सब गुड़ गोबर कर दिया। चार किताबें क्या पढ़ लीं, जिसने पढ़ाया उसे ही आँख दिखाने लगे (मेरी बिल्ली मुझसे ही म्याऊ)। सरकार ने अखबारों को कागज दिया। कहा, लो छापो। लोग औरतों को जिन्दा जला रहे हैं, सता रहे हैं, सती बना रहे हैं। पर ये अखबार वाले भी न जाने क्या छापने लगे अंट-शंट। पता नहीं क्या-क्या दलीलें देने लगे। इन्हें यह पता नहीं कि ये जो छाप रहे हैं उसके लिए कागज कौन देता है? छापने के लिए प्रेस आयातित करने की परमीशन कौन देता है? प्रेस लगाने की जगह कौन देता है? पागल कहीं के'''हद दर्जे के अहसानफरामोश, इतनी सी बात नहीं समझते कि यदि सरकार रजिस्ट्रेशन ही कैंसिल कर दे या फिर कागज का कोटा ही घटा दे और कह दे कि आज तो एक ही कागज मिलेगा तो छाप लेंगे ये अखबार? दिन-भर लाइन में खड़े रहेंगे सरकारी दफ्तरों के बाहर, एक कागज के लिए'''और जब खिड़की तक नम्बर आयेगा तो पता चलेगा कि बाबू चाय पीने गया है या फिर 'लंच टैम' है! पर पता नहीं लिखने की छूट दे दी तो सब मर्यादा भूल बैठे। अरे भाई ठीक है, लिखो, पर खाल में तो रहो।

'''सरकार के पक्ष में मेरे पास ऐसे-ऐसे धाँसू आर्ग्यूमेंट है कि तबीयत झक हो जाये

पर मैं कौन सरकार का पीआरो (पी० आर० ओ०) हूँ जो पचड़े में पड़ूँ। मैं जानता हूँ कि मेरी सीधी-सीधी बातों को लोग-बाग समझ नहीं पाएँगे। जो व्यापारी बुद्धि के लोग हैं वे कहेंगे— देखो सरकार को चम्पी लगा रहा है, पुरस्कार का जुगाड़ बिठा रहा है। जो बाल की खाल निकालने वाले हैं, वे कहेंगे— अच्छा व्यंग कर रहा है। तो भैय्ये मुझे कोई पुरस्कार नहीं चाहिए क्योंकि सरकार ने जो कुछ हवा, पानी, बिजली दे रखी है वही सबसे बड़ा पुरस्कार है। और रही व्यंग की बात तो इसकी जिम्मेदारी तो शरद जोशी, के० पी० सक्सेना, हरिशंकर परसाई की है। मेरे जैसे की क्या बिसात कि मैं व्यंग लिखूँ। मैंने तो रचना लिखकर प्रसव पीड़ा से मुक्ति पायी है। अपना दायित्व पूरा किया है। देश को ताकतवर बनाने के लिए ठोस कदम उठाया है।

○ ○

गरीबदास का विषाद-लोक

❑ भगवती लाल व्यास

मैं गरीबदास वल्द मुफलिसीराम मोहल्ला अमुविधागंज साकिन गाँव इण्डिया पाँच साल में एक बार दिखायी देने वाले बैलट पेपर पर छपे चुनाव-निशानों को हाजिर-नाजिर जान कर शपथपूर्वक घोषणा करता हूँ कि जो भी कहूँगा सच-सच कहूँगा। सच के अलावा कुछ कहने का सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि पिछले इकतालीस बरसों में सत्य के पर्यावरण में साँस लेते-लेते पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त एकमात्र चीज—असत्य के जीवाणुओं का भी स्थायी रूप से सत्यानाशीकरण हो चुका है।

सुबह अखबार खोलता हूँ तो उसमें से पतला-सा, पीला-सा एक कागज उड़कर दूर जा पड़ता है जैसे हर बसन्त ऋतु में वसन्त मुझे देखते ही बिदककर दूर जा खड़ा होता है। मगर उड़ने वाली यह चीज एक इश्तेहार है। इसमें यह बताया गया है कि मेरे लिए जरूरी मॉडर्न कपड़ों को जो यों तो बहुत कीमती हैं पर विक्रेता पर दैवी सकट आने से आधे से भी कम दामों पर 'लुटाया' जा रहा है। पहले राम-नाम की लूट होती थी अब लूट भी कपड़ों की और खसोट भी कपड़ों की। सोचता हूँ जब चारों तरफ चीजों की कीमतें बढ़ रही हों तब यह वस्त्र-विक्रेता इतने कम दामों पर कपड़े बेचकर अधनंगे हिन्दुस्तान को ढकने का प्रयत्न कर रहा है। कितना भला आदमी है बेचारा! इस निहायत निर्मम युग में कहीं तो माया-ममता बची है तभी तो धरती अपनी धुरी पर घूम रही है, वरना रसातल में न सिधार जाती! मेरा मन उस अदेखे-अपरिचित वस्त्र-विक्रेता के प्रति नमन-मुद्रा धारण कर लेता है। इससे अधिक मेरी जेब मेरे मन को करने की छूट नहीं देती वरना वह भी कर गुजरता।

सुबह के कामों से फारिग होकर दफ्तर के लिए रवाना होता हूँ। एक भीड़ भरे चौराहे को पार करने के बाद ज्यों ही लम्बी सड़क पकड़ता हूँ कि किनारे खड़ा एक मासूम-सा लड़का एक गुलाबी कागज मेरे हाथ में थमा देता है। उसके हाथ में ऐसे

ही गुलाबी कागजों का अच्छा-खासा पुलिन्दा है। मैं लड़के को अच्छी तरह देखता हूँ और उसके दिये हुए कागज को कस कर मुट्ठी में पकड़ लेता हूँ। लगता है जैसे किसी पतझर ने पास से गुजरते समय को गुलाब का गुलदस्ता थमा दिया हो। समय भी मेरी तरह जल्दबाजी में रहता है। वह हाथ के गुलाब की भीनी-भीनी गन्ध भी तभी महसूस करता है जब बेचारे गुलदस्ते की सारी हेकड़ी निकल जाती है— मेरी मुट्ठी में इस समय मौजूद इस गुलाबी कागज की तरह।

मौका देख कर मैंने वह परचा पढ़ डाला। संयोग है कि यह भी एक इश्तेहार ही था। इसमें यह चिन्ता व्यक्त की गयी थी कि मैं भी उस व्यक्ति की तरह लखपति क्यों नहीं हो जाता जिसने एक सौ आठ पोस्टकार्डों पर विशेष देवता के नाम लिख अपने मित्रों-रिश्तेदारों को इस हिदायत के साथ भिजवा दिए थे कि वे भी ऐसा ही करें। उनमें से एक नास्तिक व्यक्ति ने ऐसा नहीं किया तो उसकी जवान भैंस मर गयी, घर में आग लग गयी, लड़की की सगाई छूट गयी यानी उस पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अन्त में लिखा गया था कि इस परचे को पढ़ने वाले हर शख्स से यह अपेक्षा की जाती है कि वह कम-से-कम ऐसे ही पाँच सौ परचे छपवा कर बंटवाने का बन्दोबस्त करे। सात दिन में उसे गड़ा धन मिले, लॉटरी खुले या व्यापार में बेशुमार मुनाफा हो। अगर पढ़ने वाले शख्स ने ऐसा नहीं किया तो उसी तरह मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ेगा, जैसा एक सौ आठ पोस्टकार्ड नहीं भेजने वाले पर टूट पड़ा था। मेरे सामने अब वह गुलाबी कागज नहीं था। उसकी जगह एक तरफ एक लाख रुपये का ढेर था दूसरी तरफ मुसीबतों का पहाड़ था। दोनों मेरी तरफ ललचायी आँखों से देख रहे थे। सोचने लगा, क्या करूँ? मन ने कहा— 'गरीबदास! कर लेने दो इस बार मुसीबतों के पहाड़ को ही अपने मन की। अगली बार जेब में जब कम-से-कम सौ रुपये खर्च करने लायक होंगे तब लाख रुपये के ढेर से बात कर लेना।' मैंने जेब टटोल कर देखी। पाँच रुपये का एक मुड़ा-तुड़ा नोट और लंच में बिना दूध की चाय पीने के लिए अठन्नी का एक सिक्का था। मैंने बुझे स्वर से मुसीबतों के पहाड़ की ओर देखते हुए कह दिया— 'वेलकम मिस्टर माउण्टेन, वेलकम।'

एक दिन मेरे लेटर बॉक्स में डाक के साथ एक सफेद परचा निकला। सफेद रंग हमारे देश के नेताओं को भी बहुत प्रिय है और मुझे भी। मैं इसे एक साँस में पढ़ गया। परचा शिक्षण-संस्था की प्रबन्धकारिणी समिति की ओर से जारी किया गया था। परचे में एक स्थानीय अखबार में छपे इस वक्तव्य का खण्डन किया गया था कि उस शिक्षण संस्था के अध्यापक गण हड़ताल पर हैं। अभिभावकों को सम्बोधित इस परचे में कहा गया था, सभी अध्यापक हमेशा की तरह निष्ठा के साथ अपना कार्य कर रहे हैं इसलिए अभिभावकों को शिक्षक यूनियन की तरफ से जारी अपील पर गौर नहीं करना चाहिए तथा अपने बच्चों को पढ़ने के लिए भेजना

चाहिए। मैंने मुक्त की साँस ली क्योंकि मेरा कोई बच्चा उस महंगी संस्था में नहीं पढ़ रहा था।

फिर यह परचा मेरे लेटर बॉक्स में क्यों? मुझे लगा कि यह किसी भावी गौरव का सूचक है। सम्भव है अगले साल मैं उस स्कूल का सम्मानित अभिभावक बन जाऊँ। इस विचार मात्र से मैं पुलकित हुए बिना न रह सका। मैंने अपनी धर्मपत्नी को भी यह समाचार दिया तो वे भी बहुत खुश हुईं। उन्होंने कहा—'क्या पता स्कूल के प्रिंसिपल साहब ने कहीं यह परचा लेटर बॉक्स में छुड़वाया न हो। तुम लल्लू का फार्म तो पिछले तीन साल से भर रहे हो, इस स्कूल में दाखिले के लिए!' मैं श्रीमतीजी के भोलेपन पर निहाल हो गया। यकायक मुझे उस लड़के की याद हो आयी जो बीच सड़क के किसी काले संगमरमर की स्टेचू की तरह खड़ा गुलाबी परचे बाँट रहा था। उसका मेहनताना तय था और परचे बाँटने की विधि परचे बटवानेवाले उसे भली तरह समझा चुके थे। परचे बाँटनेवाले को इससे क्या मतलब कि कौन से लेटर बॉक्सवाले का बच्चा अमुक स्कूल में पढ़ रहा है या नहीं, कौन से साहब को परचा पढ़ने के बाद दफ्तर जाने की बजाय पाँच सौ परचे छपवाने सीधे प्रेस जाने की जल्दी मचेगी। परचे बाँटना उसका कर्म है आगे परचे बाँटनेवाले का राम जाने, उसका गम-धर्म जाने।

शाम का खाना खाने के बाद बाजार से बँधवाकर लाये पान की पुड़ियाँ खोली तो लिखा पाया, "पिछले कुछ दिनों से देसी, कलकत्ती, मद्रास और मीठे पत्तों के दामों में भारी बढ़ोतरी हुई है। अब तक तो हम घाटा सहन करके भी हमारे ग्राहकों की सेवा कर रहे थे मगर अब यह सम्भव न होगा, लिहाजा अगली पन्द्रह तारीख से हर तरह के पान की कीमत में हम पचीस पैसे की वृद्धि कर रहे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे कृपालु ग्राहक हमेशा की तरह हमारा सहयोग करते हुए बराबर सेवा का अवसर देंगे। भवदीय, सेक्रेटरी, पान मर्चेन्ट एसोसिएशन।"

इस अविश्वसनीय खबर पर विश्वास करके पान-विक्रेताओं का मनोबल बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई चारा मेरे पास न था। अगर चारा होता तो वही खा लेता। दुकानदारों की धौंस और पान साथ-साथ क्यों खाता?

एक सुहानी भोर का जिक्र और कर दूं। घर में कई दिनों से हरी सब्जी बनी थी तथा उस रोज कुछ मेहमान भी आनेवाले थे। घर में से फरमान जारी हुआ कि आधा किलो भिण्डी, आधा किलो गँवार फली, आधा किलो पालक, पाव भर टमाटर और एक लौकी ले आऊँ। इस फरमान के साथ ही प्लास्टिक की नफीस-सी ढक्कनदार टोकरी और दस रुपये का भारतीय रिजर्व बैंक का 'वायदा-पत्र' बड़े कायदे के साथ मुझे थमा दिया गया। मैं आपसे सच कहता हूँ, पिछले दस दिनों से इतने बड़े नोट का सान्निध्य मेरी जेब को प्राप्त नहीं हुआ था। इसलिए पत्नी की

इस अयाचित उदारता से मैंने स्वयं को काफी गौरवान्वित महसूस किया। दस रुपये का नोट जेब में डालकर मैं सब्जी मण्डी की तरफ उसी तरह चल पड़ा जैसे सेना का कोई ऊँचा अधिकारी सलामी लेने परेड ग्राउण्ड की तरफ चल पड़ता है।

सब्जी बाजार में पहुँचकर ज्यों-ज्यों मैं सब्जियों के भाव पूछता गया मुझे अपनी असलियत समझ में आती गयी। अन्ततोगत्वा आधा किलो हरे प्याज, पांच सात मिर्चें, थोड़ा धनिया और पाव भर टमाटर लेकर बुझे मन से अपने कृषि प्रधान देश के सब्जी मार्केट से लोटने लगा। विचार आया कि अगर मेरा देश कृषि प्रधान न होकर सब्जी प्रधान होता तो कितना अच्छा रहता। ये दिन तो न देखने पड़ते!

तभी नजर दीवार पर चिपके एक बड़े पोस्टर पर पड़ गयी। लिखा था—

"क्या आप जीवन से निराश हो चुके हैं? क्या आप खोया हुआ आत्मविश्वास और ताकत पाना चाहते हैं? तो मिलिये होटल 'बागड़-बिल्ला' के कमरा न. 171 में देश के जाने-माने हकीम होशियारचन्द्र से। हकीम साहब आजकल विदेशों में ही इलाज करते हैं मगर हमारे विशेष आग्रह पर केवल दस दिन के लिए स्वदेशी भाइयों के उपचार के लिए पधारे हैं। आपके शहर में केवल तीन दिन का मुकाम है इनका। समय शाम के चार बजे से रात के आठ बजे। हमारी विशेषताएँ—गरीबों का इलाज मुफ्त और हर मरीज के लिए सलाह एकदम फ्री। मौके का फायदा उठाना न भूलें।"

अभी-अभी भोगे सब्जी-सन्त्रास से मैं बुरी तरह निराश हो चला था। पोस्टर पढ़कर मैंने तय किया आज शाम को ही हकीमजी से मिलूँगा। गरीबों का इलाज मुफ्त करनेवाला और हर शख्स को फ्री सलाह देनेवाला हकीम जरूर दरियादिल होगा। वह मेरे सब्जी-संकट का जरूर कोई-न-कोई माकूल हल सुझायेगा ताकि दोनों वक्त दाल से तो कुश्ती न लड़नी पड़े। मैं पोस्टर में छपे हकीमजी के चित्र को मन-ही-मन प्रणाम कर उठा।

शाम को घूम आने का बहाना बनाकर मैं घर से सरक लिया और पहुँच गया होटल 'बागड़ बिल्ला।' हकीम साहब के सेवक ने मुझे एक टोकन थमा दिया। टोकन पर मेरा नम्बर लिखा था। थोड़ी देर में आवाज पड़ी मरीज न. 18। मैं अपनी जगह से उठा और चिक उठाकर कमरे में दाखिल हो गया। हकीम साहब ने मुझे सिर से पैर तक गौर से देखा और फिर अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों पर हाथ फेरते हुए पूछा—'गरीब हो?'

'जी नहीं, गरीबदास हूँ।' मैंने विनम्र होकर कहा।

'ठीक है, ठीक है! कितने गरीब हो?'

'मैं कुछ समझा नहीं।'

'अरे भाई, इसमें समझना क्या है! गरीबी की सीमा-रेखा से ऊपर हो कि नीचे हो?'

'जी मैं गरीबी की सीमा रेखा के समानान्तर हूँ। न नीचे न ऊपर।'

'ठीक है। क्या तकलीफ है?'

'जी, वो आपने लिखा था कि जो लोग जीवन से निराश हो गये हैं' खोया हुआ आत्मविश्वास और ताकत ।'

हकीम साहब खाँसने लगे। खाँसी रुकी तो तौलिये से मुँह पोंछकर बोले—'हाँ, यह हुई न कोई बात। तो तुम गरीब नहीं हो। भला गरीब आत्मविश्वास क्यों चाहेगा? गरीब के लिए आत्मविश्वास का न होना खुदाई नियामत है वरना देश में खूनी क्रान्ति हो सकती है। रही बात जीवन से निराश होने की, सो वह भी तुम नहीं हो। अगर निराश हो गये होते तो यहाँ किस आशा से आते? जाओ, हमारा टेम खराब मत करो। तुम न तो गरीब हो न निराश। अलबत्ता कोई ठग मालूम पड़ते हो। अरे भाई परेमप रकास! उन्नीस नम्बर को भेजियो तो जल्दी से।'

तो यह थी हकीम साहब की मुफ्त सलाह। मैं सलाह को अपनी जेब में ठूँस कर बाहर आ गया। रास्ते में पब्लिक पार्क पड़ता था। वहाँ कोई सिद्ध पुरुष भाषण दे रहे थे—'भाइयो, एक दुनिया वह है जिसमें आप हैं, एक दुनिया वह है जिसमें आप होना चाहते हैं। इन दोनों दुनियाओं के बीच बड़ी जबरदस्त खाई है। आप पूरी जिन्दगी खपा दीजिए मगर यह खाई पटेगी नहीं।' हाँ, हमारे बताये तरीके से आप इस खाई को राई की तरह मसल सकते हैं। अपने सपनों की दुनिया में जा सकते हैं, उसे पा सकते हैं, जहाँ न राग है न द्वेष है, न पाप है न पुण्य है, न अच्छा है न बुरा है। जहाँ सब कुछ आनन्दमय है। वहाँ पहुँचकर आप खुद अनुभव कर लेंगे कि आपके और आपके आनन्द के बीच कोई तीसरी चीज है ही नहीं। इस आनन्द लोक में प्रवेश बहुत आसान है। हम शीघ्र ही आपके नगर में 'आनन्द-साधना-केन्द्र' खोलने जा रहे हैं। जो भाई मेम्बर बनना चाहें हमारे कार्यालय में अभी प्रवचन के तुरन्त बाद पधार जाएँ और शुल्क जमा करवा दें। वहाँ से आपको हमारा लिटरेचर और साधना-केन्द्र की नियमावली निःशुल्क प्राप्त होगी। यह अवसर हाथ से न जाने दें वरना बाद में पछताना पड़ेगा।

अनायास मेरा हाथ अपने जेब में चला गया जहाँ कुल अस्सी पैसे मौजूद थे। मुझे लगा कि आनन्द लोक के मुख्य द्वार से मैं एक बार फिर विषाद-लोक में धकिया दिया गया हूँ।

● ●

यमलोक का अंग्रेजी विभाग

□ जानकी प्रसाद पुरोहित

हमारे एक परम मित्र पड़ौसी हैं श्यामजी मिश्र। बड़े सवेरे हमारे साथ चाय पीने का उनका दैनिक कार्यक्रम है। कई बार हमने और श्रीमतीजी ने उनके इस दैनिक आतिथ्य से ऊबकर मन-ही-मन उन्हें गालियाँ दी, उन्हें हतोत्साहित करने के लिए अप्रत्यक्ष रूप से झिड़कियाँ भी दी। इन सबके बावजूद उनके उत्साह मे कोई कमी नही आई। एक प्याले चाय मे वे हमें दुनिया-भर की राजनीतिक हलचलों से अवगत करा देते है। उनके आगमन के बाद हमे समाचार-पत्र पढ़ने की आवश्यकता ही नही रहती। अतः हमने श्रीमतीजी के रोष को दूर करने के लिए श्यामजी को भेंट किये जाने वाले चाय के प्याले की जगह समाचार-पत्र लेना बन्द कर दिया।

मिश्रजी अपने संस्कारों के कारण हिन्दी के प्रति अगाढ़ प्रेम रखते है। देश मे हिन्दी के सम्बन्ध मे जब भी कोई विवाद उठता है, उस दिन उनकी चर्चा का मुख्य विषय भी वही होता है। हम तो उनकी बातों को कान बन्द कर सुनने के अभ्यस्त हो चुके हैं। कल बड़े सवेरे मिश्रजी महाराज के आगमन से हम समझ गये कि आज कोई-न-कोई विशेष बात है। आते ही हमने चाय के प्याले से उनका सत्कार किया। आधा प्याला पी लेने के बाद बोले, "मास्टरजी, आज बड़ा अद्भुत स्वप्न देखा मैंने।"

सदा की तरह उनकी बात पर बिना ध्यान दिये हमने कहा, "सुनाइए।"

"मास्टरजी, स्वप्न क्या, मुझे तो यह सत्य-सा ही लगता है। हम तो आज यमलोक से लौटकर आए हैं।"

श्यामजी के अगले वाक्य ने हम पर कुछ प्रभाव डाला। हमने व्यग्रता से पूछा, "क्यों, क्या हो गया?"

"अजी, अंग्रेजी महारानी ने तो यमलोक मे भी अपना राज्य जमा लिया।"

"कैसे ?" हमने पूछा।

श्यामजी बोले, "मास्टरजी, रात को मैं सदा की भाँति भंग-बूँटी लेकर सोया ही था कि मेरे सामने दो भीमकाय काले रंग के व्यक्ति आ खड़े हुए और मुझे अपने साथ चलने को कहा। अधिक पूछ ताछ करने पर मालूम हुआ कि मेरी आयु समाप्त हो चुकी है अतः वे मुझे लेने आये हैं। सचिवालय के कर्मचारियों जैसी पोशाक देखकर मुझे पहले तो उन पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने छाती कड़ी कर भय-मिश्रित आवाज में कहा, 'कौन हो तुम ? यमदूतों के नाम से मुझे डराकर मेरा अपहरण करना चाहते हो ? मुझे ऐसा-वैसा यजमानी मिश्र न समझना, मैंने बहुत पुराण-पोथों का अध्ययन किया है। मैं जानता हूँ कि यमदूत कैसे होते हैं। चुपचाप चले जाओ यहाँ से, अन्यथा ।"

एक यमदूत ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, "मिश्रजी महाराज, अब यमलोक में उन पुराण-पोथों की भी व्यवस्था नहीं रही। यह लीजिए, आपके नाम का आदेश।" और उसने एक पत्र निकालकर मेरी छाती पर रख दिया। कोई उपाय न देखकर मैं उनके साथ हो लिया।

थोड़ी ही देर में हम विद्युत प्रकाश से जगमगाते एक विशाल भवन के सामने पहुँचे। भवन के अन्दर और बाहर बड़ी चहल-पहल थी। भवन के द्वार पर हिन्दी को छोड़कर अनेक भाषाओं में बड़े-बड़े अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था। मैंने यम-दूतों से पूछा, "यह क्या लिखा हुआ है ?"

"यमलोक"—उनमें से एक ने कहा।

"हिन्दी में क्यों नहीं है ?" मैंने पूछा।

"हिन्दी सैक्शन उधर है।" पूर्व की ओर संकेत करते हुए उसने कहा।

यमदूतों ने मुझे भवन के अन्दर ले जाकर आधुनिक ढंग से बने एक बड़े कमरे के सामने बैठा दिया। थोड़ी ही देर में घण्टी बजी और अन्दर ले जाकर कोट-पैंट पहने एक बड़े अफसर के सामने प्रस्तुत किया गया। कमरे के अन्दर का वातावरण अब तक यमलोक के बारे में पढ़े-सुने वातावरण में बिल्कुल भिन्न था। कमरे की व्यवस्था और सजावट किसी केन्द्रीय मंत्री के कार्यालय से कम नहीं थी। अफसर ने भर्रायी आवाज में मुझसे कुछ पूछा किन्तु मैं उसकी भाषा समझ नहीं सका। एक यमदूत ने कहा, "इण्डियन।" इस पर पास में ही बैठे बाबू ने मेरी ओर देखकर कहा, "क्या नाम है ?"

"श्यामजी मिश्र" मैंने कहा।

बाबू ने कागज की एक चिट पर कुछ लिखकर यमदूतों को दे दिया और कहा —'हिन्दी सैक्शन।" यमदूत मुझे लेकर हुए बाहर आ गये। विशाल भवन की कई गलियों को पार करते हुए मुझे एक-दूसरे कमरे के सामने ले जाया गया। अब

सब कुछ मेरी समझ में आ रहा था। कमरे के बाहर हिन्दी में लिखा हुआ था :

यमदूत कार्यालय,

हिन्दी-विभाग, भारत

मुझे कमरे के अन्दर प्रस्तुत किया गया। सामने धोती पहने एक दुबला-पुतला व्यक्ति बैठा हुआ था। कमरे का वातावरण पहले कमरे से बिल्कुल भिन्न था। उस व्यक्ति ने मुझसे पूछा—"क्या नाम है?"

"श्यामजी मिश्र।" मैंने दबे स्वर में उत्तर दिया।

पास में बैठे दूसरे व्यक्ति ने कई रजिस्टरों के पन्ने पलटे। बड़ी परेशानी के साथ उसने कहा, " इस नाम के व्यक्ति की तो अभी 30 वर्ष की आयु शेष है।" दुबले-पतले व्यक्ति ने साश्चर्य उसकी तथा मेरी ओर देखा। उसने घंटी बजाई। एक व्यक्ति कुछ फाइलें लेकर आया। दुबले-पतले कार्यालयाध्यक्ष ने फाइलों के पन्ने उलट-पुलटकर एक कागज निकाला और जोर-जोर से बोलते हुए लिखा—"श्यामजी मिश्र नाम के एक व्यक्ति की उम्र अभी 30 वर्ष की और है। अतः आदेश रद्द किया जाकर आगे कार्यवाही का आदेश दिया जाए।" कागज लेकर एक यमदूत कमरे के बाहर चला गया। मुझे सामने रखी एक तिपाई पर बैठ जाने के लिए कहा।

थोड़ी ही देर में टेलीफोन की घंटी बजी और किसी साहब ने झिड़कते हुए कुछ कहा। कार्यालयाध्यक्ष ने टेलीफोन रखते हुए बड़े बाबू को बुलाया तथा ऊँचे स्वर में कहा, "कैसा काम करते हो तुम? मुख्य कार्यालय का क्या ऑर्डर था और तुमने उसका क्या अनुवाद किया? केयरलेस कहीं का..."

यमदूत मुझे कमरे से बाहर ले आये। मैंने पूछा, "भाई, क्या बात है?"

"अजी, आजकल के छोकरों को कुछ आता-जाता तो है नहीं, डिग्री लेकर बाबू बन जाते हैं। श्याम और मिश्र की दो आत्माओं को लाना था, ऑर्डर भूल से भारत सैक्शन में आ गया तो बाबू ने आँख बन्द कर श्याम मिश्र को लाने का आदेश जारी कर दिया।

परमात्मा को धन्यवाद देते हुए मेरे मुँह से निकल पड़ा—'हे राम!' राम के साथ ही मैंने देखा कि मैं अपने बिस्तर पर करवट बदल रहा हूँ। मिश्रजी की घटना समाप्त होते ही हमने उनकी ओर एक अतिरिक्त चाय का प्याला बढ़ा दिया।

○ ○

राइटर बनने के चंद नुस्खे

☐ देवप्रकाश कौशिक

बहुत से लोग लेखक या कवि बनने के लिए लालायित रहते हैं। बड़े लेखकों की रायल्टी, कवियों के कवि-सम्मेलन के रेट सुनकर उनके मुँह में पानी आता है। यदि आप भी कहानीकार, नाटककार, कवि आदि बनना चाहें तो हम आप की मदद कर सकते हैं। राइटर बनने के चन्द नुस्खे हाजिर हैं।

सबसे पहले तो आप अपने दिमाग से यह बात निकाल दीजिए कि राइटर जन्मजात होते हैं। पहले होता होगा किसी जमाने में, लेकिन आज के इस लिबरल तिकड़मी युग में बिना जन्मजात गुण हुए कोई भी व्यक्ति राइटर या रचनाकार बन सकता है। अब स्वयं तय कर लीजिए कि आप क्या लिखना चाहते हैं— कहानी, उपन्यास, कविता या अन्य कुछ।

यदि आप कहानी लिखना चाहते हैं तो किसी भी घटना का बयान कर दीजिए। घटना न हो तो बिना घटना के लिख लीजिए। घटना न हो तो और भी अच्छा क्योंकि घटना-रहित कहानी आधुनिक कहानी होती है। पाँच-सात पेज रंगने के बाद यदि आपकी धर्मपत्नी मधुर या कर्कश स्वर में आपको पुकारे तो तुरन्त कहानी को छोड़कर उनकी सेवा में उपस्थित हो जाइए। उनकी सेवा करने के पश्चात् कहानी जहाँ छोड़ी थी, वहीं उसका अन्त कर दीजिए। अन्तहीन अंत आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है।

इसके बाद कहानी को कोई आकर्षक शीर्षक दे डालिए। इसकी चिन्ता न करें कि शीर्षक तथा जो कुछ भी आपने लिखा है उसमें सम्बन्ध है या नहीं। यदि सम्बन्ध न होगा तो आपका शीर्षक प्रयोगवादी तथा आधुनिक होगा। आपने कई आकर्षक शीर्षक पढ़े-सुने होंगे—जैसे एक बायलन समुद्र किनारे, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ, सुन्दर तो तुम हो माँ !, वह फिर नहीं आयी आदि।

इस बात का भी ध्यान रखें कि कहानी के नाम के साथ-साथ आपका नाम तथा पता भी आकर्षक होना चाहिए। यदि आपका नाम सुन्दर न हो तो आप उसे सुन्दर बना सकते है। मान लीजिए कि आपका नाम घसीटाराम शर्मा है तो आप इसे जी० राम शर्मा लिख सकते है। शर्मा को सरमा, चन्द्र को चन्दर (कृष्ण चन्दर की तर्ज पर) लिखने की स्टाइल भी काफी पॉपुलर हो रही है। कवि बनना है तो अच्छा-सा उपनाम चुन लें। कुछ लोग तो लोकप्रिय कवियों के उपनाम ज्यों का त्यों लगा लेते हैं क्योंकि उपनामो का पेटेण्ट तो कोई है नही। शायद इसीलिए एक से अधिक नीरज, नीरद, आवारा आदि उपनाम देखने को मिलते है।

पता भी आकर्षक होना चाहिए। बिना मकान बदले भी आप पते में परिवर्तन कर उसे आकर्षक बना सकते हैं। भले ही आप भैंसों के तबेले में रहते हो, निवास का नाम लिखिए अनामिका, गजल, मधुवन, सस्कार आदि। हां, अपने ईजाद किए पते में पोस्टमैन को जरूर अवगत करा दें जिससे कि डाक आपको मिलती रहे। उपन्यास लिखना चाहें तो कहानी का आकार पन्द्रह-बीस गुना बढ़ा दें। बस उपन्यास भी तैयार।

इण्टरव्यू भी आज की पॉपुलर विधा है। नेता, अभिनेता-अभिनेत्री, लेखक, कवि—किन्ही का भी इण्टरव्यू ले लीजिए। अधिकाश व्यक्ति तो इण्टरव्यू देने को लालायित ही रहते है। कुछ इतने उतावले हो जाते है कि इण्टरव्यू देने आपके घर पर खुद चले जाएँगे, इण्टरव्यू के कच्चे धागे से बन्धे हुए। आठ-दस प्रश्न उनसे पूछिए तथा उत्तर नोट करके फोटो सहित भेज दें पत्रिका में। बस आपका इण्टरव्यू बिना किसी खास दिक्कत के तैयार हो गया। और यदि इण्टरव्यू लेने ही न जाना चाहें तब भी परेशानी की कोई बात नही। पत्र में प्रश्न भेजकर उसके उत्तर प्राप्त कर लें। कोई आपसे यह नही पूछने वाला है कि आपने मिलकर इण्टरव्यू लिया है या नही। बहुत से लोग तो स्वयं ही प्रश्नों के उत्तर लिखकर इण्टरव्यू लिख रहे हैं।

पुस्तकों की समीक्षा भी चाहे तो लिख लीजिए। इसके लिए पुस्तक पढने की आवश्यकता नही। बस उलट-पलटकर देख ले, भूमिका पढ़ ले, उपलब्ध हो तो उसी पुस्तक की समीक्षा पढ़ लें। दो-चार गुण दो-चार दोष लिख लें, बस हो गई समीक्षा तैयार। जब अशोक कुमार 'हम लोग' टी०वी० सीरियल देखे बिना उसकी समीक्षा कर सकते हैं तो आप क्यों नही?

रचना छपने के तुरन्त बाद विभिन्न नामो से उसकी प्रशंसा उसी पत्रिका के 'सम्पादक के नाम पत्र' स्तम्भ मे लिख भेजिए। ऐसा करने से उस पत्रिका के अगले अंको में आपका स्थान रिजर्व हो जाएगा।

यदि इतने नुस्खे आजमाने के बाद भी सम्पादक आपकी रचना सखेद लौटाने की धृष्टता करे तो दो-चार रचनाएँ उसे और भेजिए। यदि फिर रचना लौटा दे

तो उस पत्रिका में छपी कुछ रचनाओं की बखिया उधेड़कर पोस्ट-मॉर्टम कर डालिए और 'सम्पादक के नाम पत्र' स्तम्भ में भेजिए। दोष तो किसी भी रचना में खोजे जा सकते हैं। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि सम्पादक आपकी रचना प्रकाशित करेगा। इन नुस्खों के आजमाने से आप को निश्चित सफलता मिलेगी।

० ०

कुत्ता आदमी है

☐ दीनदयाल शर्मा

शीर्षक पढ़कर चौंकिए नहीं, क्योंकि पशुगणना वालों ने अब कुत्तों को भी पशुओं की श्रेणी में रख लिया है। हो सकता है भविष्य में कुत्तों को जनगणना में भी शामिल कर लिया जाए। चूंकि मैंने जबसे होश सम्भाला है कुत्तों को आदमी ही समझता आ रहा हूँ। शायद आपको हँसी आ रही है मेरी इन बातों पर। लेकिन जनाब, कुछ गहराई में झाककर देखिए। फिर आप मान जाएँगे कि मैं बात तो सोलह आने सही कर रहा हूँ।

कुत्ते को आदमी कहना इतना बुरा नहीं है जितना कि आदमी को कुत्ता कहना। क्यों सही है न मेरी बात। हाँ तो अब सुनिए। कुत्ते में "वो" क्या नहीं है जो आदमी में है और आदमी में वो क्या चीज है, जो कुत्ते में नहीं है।

कुत्ते के सींग नहीं होते। कुत्ता नींद कम लेता है। कुत्ता एक-दूसरे पर भौंकता है। मौका मिलने पर काट भी लेता है। कुत्तों में एकता नहीं है। कुत्ता चमचागिरी कर लेता है। कुत्ता भरे बाजार में दिन-दहाड़े एक-दूसरे की इज्जत आसानी से लूट लेता है। कुत्ता कमजोर को खदेड़ देता है। कुत्ते की सूंघने की शक्ति बड़ी तेज होती है। कुत्ता पालतू भी है और जनसंख्या बढ़ाता है तो खाने के मामले में भी पीछे नहीं है, सब कुछ चलता है। घर-घर माँगकर खाने में शर्म महसूस नहीं करता।

उपर्युक्त सभी गुण आदमी में नहीं होते क्या? अब तो मान गए मेरी बात कि कुत्ता आदमी होता है।

ये तो था तुलनात्मक अध्ययन। इसके अलावा कुछ और भी तथ्य हैं, जिसमें आदमी कुत्ते से दो कदम आगे ही है। मसलन आदमी के पूँछ होती है, कुत्ते की पूँछ से भी बड़ी। आदमी के चार की बजाए छः पैर होते हैं। फर्क इतना है कि चार

काठ के और दो उसके अपने। सनद रहे, इनमें "आम आदमी" को शामिल नहीं किया गया है।

कुत्ता "कुत्ता" होने के बाद भी ईमानदार है। वह न झूठ बोलता है, न झूठ आश्वासन देता है और न ही चोरी करता है। नहीं तो पेरिस के एक होटल में यह तख्ती कभी नहीं लगती कि स्वागत है कुत्तों का। इस होटल में कुत्तों के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

यही नहीं, होटल के अन्दर एक बड़ा-सा बोर्ड भी लगा है, जिस पर लिखा है—"हम कुत्तों के प्रवेश की अनुमति देते हैं, क्योंकि ये अपने जूतों को चमकाने के लिए परदों का इस्तेमाल नहीं करते। वे चमचे एकत्र नहीं करते और जाते समय न ही होटल की चादरें ले जाते हैं।

आप अगर मेरे विचारों से सहमत नहीं हैं तो ना सही, लेकिन इस बात से तो वाकिफ हैं कि आदमी को कुत्ता बनने में कितनीक देर लगती है।

○ ○

हम अंग्रेजों के जमाने के अफसर हैं

□ भगवतीलाल शर्मा

कुछ वर्ष पूर्व मैंने एक फिल्म देखी थी। उसमें एक जेलर का चरित्र था। उसका एक संवाद था—हम अंग्रेजों के जमाने के जेलर हैं। निर्माता ने इन बेहूदे चरित्र का सृजन मात्र दर्शकों को हँसाने के लिए किया था, और वह इसमें पूरी तरह सफल भी रहा था पर आज बहुत दिनों बाद यह बात समझ में आई, कि नहीं, निर्माता का मकसद मात्र हँसाना नहीं था बल्कि कुछ और था और वह यह बताना था कि इस देश में, हमारे अपने इस आजाद देश में, हमारे खून से सींचे और हमारी मांस मज्जा से बने इस देश में, इसी देश का आदमी इसी देश के आदमी पर, जो रिश्ते में भाई होते हैं, अंग्रेजों के जमाने का अफसर ही बना हुआ है। तब वह सम्वाद हँसने की चीज नहीं रही, सिर धुनने की चीज बन गया।

बात यह हुई कि एक मास्टर साहब अपनी कन्या की शादी के लिए दौड़-धूप कर जी०पी० एफ० का ऋण स्वीकृत करा लाए। दौड़-धूप का मतलब बताने की ज्यादा जरूरत नहीं है। दौड़ते हुए और देवताओं के धूप देते हुए; यही इसका मतलब है। ऑफिस से बिल भी बन गया। ट्रेजरी से निकलवा भी लिया, अफसर से एन्केश भी करवा लिया और मेरे सामने धर भी दिया—ला दीजिए सर, आज ही जरूरत है। मैंने बिल लिया, रजिस्टर में लिखा है कि बैंक जा रहा हूँ और स्कूल से निकल गया।

बिल लेकर ऑफिस आया। अधिकारी जब तक केश कराने वाले के हस्ताक्षर प्रमाणित न कर दे, बैंक बिल लेता ही नहीं।

ऑफिस में छोटे साहब, जिन्हें इस काम के लिए रख छोड़ा है, थे नहीं। यों साहब मिलते भी नहीं। उनका मिलना जरूरी भी नहीं। मिल जाए तो वे साहब भी क्या हुए! यों इधर एक कहावत है—जहाँ राणाजी, वहीं उदयपुर। सो जहाँ

साहब, वही दफ्तर। अब वह दफ्तर कहाँ है, यह देखना अपनी ड्यूटी है।

वैसे हमारे उस ऑफिस में भी वर्ण व्यवस्था है। हमारी किस्मत ही ऐसी है कि हम एक व्यवस्था से निजात नहीं पाते, उसके पहले दूसरी व्यवस्था किसी वर्ण के लिए हानिकारक नहीं है, क्योंकि यह पूरी तरह समाजवादी कहीं न कहीं जन्म ले लेती है पर हमारी यह कार्यालय वर्ण व्यवस्था व्यवस्था के आधार पर विकसित हुई है। यह साहबों का संसार है। इसमें चार वर्ण है—बड़ा साहब छोटा साहब, बाबू साहब और खाली साहब। इस खाली साहब को आप कोई भी साहब बनाकर अपना काम बना सकते है, क्योंकि यह बैठता जरूर स्टूल पर है, पर बड़ी-बड़ी कुर्सियों का काम करा देने की ताकत रखता है।

हम भी मास्टर साहब हैं, यानी हम भी साहब है, मगर हम ऐसे साहब हैं कि जैसे लोकतन्त्र में जनता राजा होती है। दूसरे उन साहबों का सम्बन्ध किसी जनता से तो होता नहीं, सो हम ही इनकी जनता हैं। ये हमारे साथ व्यवहार भी उतना ही उत्कृष्ट करते है, जितना राजा प्रजा के साथ किया करता था। हमारा वेतन बिल देते समय ये हमारी ओर ऐसे ही देखते हैं जैसे हम पर खुश होकर हमें इनाम बाँट रहे है।

तो मैं छोटे साहब के लिए पूछता हुआ बाबू साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। कहता है कि मैं हेडमास्टर हूँ पर इन बाबू साहब के लिए मात्र इनकी जनता हूँ सो उन्होंने महरबानी कर मेरी ओर देखा और सोचा—जैसे कि राज-काज में विघ्न डालने का अपराधी हूँ और मेरे लिए कौन-सी सजा तजवीज करनी चाहिए ताकि भविष्य में ऐसी गलती न हो और शेष जनता को भी इबरत मिले। मैं घबराकर वहाँ से भाग छूटा। मगर भागकर जाता कहाँ! दरवाजे पर, जहाँ खाली साहब कभी खड़े और कभी बैठे रहते है। कभी आने वाले का इस्तकबाल करते और कभी उनसे सलाम लेते है, आकर खड़ा हो गया! उन्होंने दो मिनट, पाँच मिनट, दस मिनट मुझे देखा, फिर वहाँ अनधिकार खड़े होने का सवाल पूछा। मैने बता दिया कि हे श्रीमान्! जो गति गाँव की ओर मुँह करने पर गीदड़ की होती है, वही गति इस समय मेरी हो रही है। वे बड़े दयालु सज्जन थे, बोले—अजी श्रीमान् दफ्तर में बड़े साहब विराजमान हैं और आप यहाँ खड़े हैं।

समय बड़ा कीमती होता है, यानी उसे गँवाना नहीं चाहिए। मैं तरकश से निकलने की तरह वहाँ से छूटा और धनुष से निकलने की तरह बड़े साहब के कमरे में घुसा। (बड़े साहब माफ करना, कमरा मैंने कह दिया वह तो दरबार-ए-खास है। वैसी ही सजावट, वैसा ही सिंहासन वैसे ही आसन।) और यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि आज बड़े साहब दफ्तर में हैं। यह सोचकर उससे भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज मेरी किस्मत कितनी जोर में है।

मैंने अपने-आपको बड़े साहब के सामने नतमस्तक खड़े पाया। बिल हाथ में नहीं होता तो हाथ भी बँधे मिलते मेरे। बिल उनकी ओर बढ़ाया है। चिर-परिचित बिल—आदमी नौकरी में आकर सबसे पहले उसी से अपनी पहचान पक्की करता है, वही। देखा, फिर भी पूछा उन्होंने—क्या है? मैंने कहा—बिल है। उन्होंने पूछा—"तो मैं क्या करूँ?" मैंने कहा—"मेरे हस्ताक्षर प्रमाणित कर दीजिए।" उन्होंने आदेश दिया—"शर्मा साहब (छोटे साहब) के पास जाओ।"

मैं बोल नहीं सका। बोलने की मनाही नहीं है, पूरी आजादी है। पर बड़े साहब हों, चाहे छोटे साहब, बाबू साहब हों चाहे खाली साहब, कोई भी साहब हो, उनके सामने बोलना नहीं चाहिए। बोलना मुँहजोरी में माना जाता है। मेरी दशा उस गुलाम की तरह है, जिसके कोड़े पड़ते हैं, पर मुँह से सिसकी नहीं निकलती। जानता है, सिसकी निकालने से साहब बहादुर नाराज होंगे और नाराजी में कोड़ों की सजा घोड़ों की टापों में बदल जाएगी। साहब बड़े हैं, उनकी बड़ी बुद्धि में यह बात कैसे आ सकती है कि छोटे साहब होते तो पागल कुत्ते ने नहीं काटा मुझे कि उनके पास लाता।

मैं एक मिनट खड़ा रहा। उन्होंने हाथ हिलाकर कहा कि मैं इस काम के लिए नहीं हूँ और चेतावनी दी कि भविष्य में इस काम के लिए मुझे परेशान नहीं किया जाए। और कहा कि बिल यहाँ रख दो। मतलब यह था कि बिल यहाँ रख दो और भीड़ खाली करो, यानी वही कि मेरे अँगना पे तुम्हारा क्या काम है। बाहर बैठो, इन्तजार करो, अपनी किस्मत कितनी सिकन्दर है, इसका टैस्ट करो। अब मैंने देखा कि छत पर टँगा पंखा बड़े साहब को हवा कर रहा है। इधर उनकी हुजूरी में छोटे साहब विराजमान हैं, उधर बाबू साहब आसीन हैं - मध्य में खाली साहब हाजरी उठाने को तत्पर हैं। कमरे के वातावरण में कुछ पल पूर्व निकलते हँसी के ठहाकों की गूँज है। मैं कहाँ आ गया? यह अपना ही ऑफिस है क्या? यहाँ अपने संरक्षक बैठे हैं क्या? मैं बाहर निकलकर कार्यालय का नाम पढ़ता हूँ, और तसल्ली कर लेता हूँ कि मैं गलत ऑफिस में नहीं घुसा हूँ।

मैं दरवाजे पर खाली साहब के खाली पड़े स्टूल पर बैठ जाता हूँ। अभी वे आएँगे और उठा देंगे, फिर कहाँ बैठेंगे? इस ऑफिस में मास्टरों के बैठने के लिए जगह नहीं है। हो भी क्यों? अपने ही ऑफिस में मास्टर लोग यदि बैठ जाएँगे तो खड़ा कौन रहेगा! वे खड़ा रहने के लिए ही है। हर मेज, हर कुर्सी, हर स्टूल के सामने उन्हें खड़ा ही रहना है। वे खड़े नहीं रहेंगे तो उस संसार का साहबी माहौल ही खतम हो जाएगा। और फिर आप यहाँ क्या कर रहे हो मास्टर साहब? आपको तो स्कूल में होना चाहिए, आने वाले साहबों की खातिर-तवज्जो के लिए।

मेरी किस्मत थी कि मुझे उठाने कोई आया नहीं। क्योंकि उस वक्त वे खाली साहब बाबू साहबों के लिए चाय सिगरेट लेने गए थे।

बिल मेरा बड़े साहब की मेज पर पड़ा है। जाने कब साहब का मूड आ जाए, जाने कब साइन हो जाए, और जाने कब मेरे पास आ जाए। मैं यहाँ न मिला और खाली साहब बिल पुनः बड़े साहब की सेवा में पहुँचा आए कि संबंधित गायब है, तो लो, फिर करो पेशी, बड़े साहब के दरबार में। सौभाग्य से इस काम के लिए उनके पास समय की कमी भी नहीं है। गोया उनका जन्म इसी एक काम के लिए हुआ है—इसी काम के लिए, इसी एक नेक काम के लिए। इसलिए यहीं बैठे रहो। पेशाब-पानी भी बन्द रखो।

मैं बैठा हूँ, वहीं स्टूल पर। मेरा बिल बड़े साहब की टेबल पर घायल कबूतर की तरह फड़फड़ा रहा है। क्या बिगड़ जाता उनका? काम कितना-सा था? हाथ हिलाकर मुझे नटने में, मुंह खोलकर दो बात पूछने में उन्होंने जितना कष्ट उठाया, जितना समय गँवाया, उसका एक अंश भी उस काम में नहीं लगता। वे भी खुश, मैं भी खुश। लेकिन क्यों करें ऐसा, उनका मूड ही नहीं बना वैसा। कोई आपकी जबरदस्ती नहीं, उनकी मरजी। करें तो करें, न करें, तो न करें। वे आपके गुलाम नहीं। वे अफसर हैं, और अफसर भी अंग्रेजों के जमाने के हैं।

आप सोच रहे होंगे कि मैं उस स्टूल पर कितने आराम से बैठा हूँ, पर मैं ही जानता हूँ मैं उस बिल की कितनी असह्य प्रसव पीड़ा भोग रहा हूँ, जबकि बिल बड़े साहब के गर्भ में चल रहा है।

○ ○

अपेक्षा स्वर्ग की

☐ रामस्वरूप परेश

यह भी कोई समय था उसके आने का। रात के दो बज रहे थे कमबख्त कमरे मे आ धमका। ऐसे समय में न उधार मांगने वाला आ सकता और न आयकर अधिकारी। ऐसे निश्चित समय में लाल-लाल आँखों से घूरते हुए कड़ककर मुझे खड़े होने का आदेश दिया। मैं एक बारगी पुलिसमैन की-सी उठी हुई नुकीली मूँछों को देखकर घबरा गया। उसने कहा मैं तुम्हें लेने आया हूँ। मैं बोला, "लेने तो आज तक हमें कोई आया ही नही, हम तो मामूली आदमी हैं, सदा बुलाए ही जाते हैं।"

वह कड़ककर बोला—"मजाक करते हो। जानते नही यह तुम्हारा अन्तिम समय है और तुम्हारे सामने खड़ा है यमदूत।" मैंने हाथ जोड़कर कहा—"आप महान् हैं, सर्व-शक्तिमान हैं, मृत्यु देवता के आज्ञाकारी सेवक हैं···।" इतने विशेषणों का प्रयोग यह सोचकर किया कि कम्पाउण्डर को डॉक्टर कहने पर वह मरीज का विशेष ध्यान रखता है, पुलिस चौकी के सिपाही को थानेदार का सम्बोधन थोड़ा विनम्र बना देता है, तथा मामूली चपरासी को चतुर्थ श्रेणी का अधिकारी कहते ही वह बॉस की सारी कमजोरियाँ खोलकर रख देता है तो शायद यमदूत पर भी इस प्रक्षेपास्त्र का कोई असर हो। मैंने कहा—"आप चाहें तो अभयदान भी दे सकते हैं और मोहलत भी। अभी बच्चे छोटे हैं, नगर पालिका का चुनाव आने वाला है, दो-तीन दिन में वेतन मिलने वाला है।"

शायद वह थोड़ा प्रभावित हुआ और बोला—"कुछ भेंट-पूजा दो तो कुछ समय की मोहलत पर विचार किया जा सकता है।"

"भेंट-पूजा," मैंने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ-हाँ, मृत्युलोक का आदमी और भेंट-पूजा शब्द पर इतना आश्चर्य! तुम तो ऐसे पूछ रहे हो जैसे भ्रष्टाचार समाप्त होने की खबर सुनी हो। क्या अपने

राष्ट्रीय धर्म को भी नहीं जानते, इसी गुण के कारण ही तो वसुधैव कुटुम्बकम् जैसी उदार भावना पैदा होती है।"

"समझा-समझा" मैंने कहा। एक मिनट में लौटने के लिए कहकर बराबर के कमरे में गया। इधर-उधर खोज-बीन के बाद एक दस रुपये का नोट मिला। वह लाकर मैंने उसे थमाते हुए उसकी मुख-मुद्रा पहचानने का प्रयत्न किया। उसने त्योरियाँ बदली, "वाह! मुझे चपरासी के स्तर की रिश्वत देते हो। अफसर के स्तर की रिश्वत देते तब तो कुछ समय की मोहलत देने पर विचार भी करता। भला इतने से पैसों के लिए अपना ईमान क्यों बिगाड़ूँ?"

"पर साहब इतने पैसों में तो पुलिस का सिपाही भी कुछ समय तो दे ही देता है।" मैंने विनम्रता से कहा "आप तो जानते ही हैं कि आज 29 तारीख है और ऐसे समय दस रुपये का नोट सौ के बराबर है। नौकरी-पेशा आदमी इन दिनों में नक्सल पंथी हो जाता है। महीने का पहला सप्ताह वह पूँजीपति होकर गुजारता है और दूसरा समाजवादी होकर, तीसरे में कम्युनिस्ट बन जाता है और चौथे में ''।"

उसने बीच ही में टोककर कहा—"बस-बस बन्द करो अपना भाषण और चलो मेरे साथ, हमेशा के लिए इस दुनिया से।" मैं विवश था, क्या करता! दरवाजे से बाहर निकल आया, जिज्ञासा थी इसलिए पूछ लिया—"यमदूतजी! यमलोक का तो हवाई मार्ग है ना?"

"हाँ-हाँ, और क्या पैदल जाएगा!"

"पैदल तो आजकल कोई तीर्थ-यात्रा भी नहीं करता। मेरा कहना यह है कि अब वायुयान से यात्रा और यमलोक की यात्रा में कोई अन्तर नहीं है, फिर लाश भी कनिष्क विमान के ब्लेक बॉक्स की तरह मिले तो मिले।"

वह यह सब सुनने के मूड में नहीं था। पलक झपकते ही मुझे यमराज के सम्मुख खड़ा कर दिया। एक सज्जन मेरे आगे खड़े थे। उनकी वेशभूषा से लगता था कि वे कोई नेता थे। यमराज ने कड़ककर मेरे आगे खड़े नेता से कहा—"हमारा दूत तुम्हें लाने गया और तुम उसे मिले ही नहीं। यह विलम्ब से पहुँचने का क्या कारण है?"

मेरे आगे वाले सज्जन अपनी दूधिया टोपी को तनिक ठीक करते हुए होठों पर मिश्री घोलते हुए बोले—"श्रीमान्, हम नेता हैं, जलसा हो या उत्सव, उद्घाटन हो या शोक-सभा, सबसे विलम्ब से पहुँचना हमारी सांस्कृतिक परम्परा है। परम्परा का उल्लघंन करना हमारे सम्मान के खिलाफ है।"

"वाह! कैसी परम्परा है तुम लोगों की? क्या जनता ऐसे लोगों को माफ कर देती है।" यमराज ने पूछा।

"जनता। हमारे देश की जनता बड़ी समझदार है। मैं मन्त्री बना ही था। एक उद्घाटन समारोह में जाना पड़ा। समय ठीक अपराह्न 3 बजे था, मैं ठीक समय

पहुँचा। तो क्या देखता हूँ कि आयोजक दौड़-धूप में लगे हैं। कोई शामियाना ला रहा है तो कोई कनात, दरीवाले दरी बिछाने में व्यस्त हैं, लाउडस्पीकर वाले'''।"

"तुमने क्या इसे सभा समझा है जो भाषण दे रहे हो?" जो कहना है जल्दी कहो। यमराज ने बीच में टोकते हुए कहा।

"श्रीमान्, यह मेरा समय पर पहुँचने का पहला और अन्तिम अवसर था। इसके बाद मैंने कभी ऐसी भूल नहीं की। जनता की भी मानसिकता विकसित हुई है समय पर पहुँचने वाले को अच्छा नेता नहीं समझा जाता और आप जानते हैं कि इस छोटी-सी बात के लिए कोई क्यों अपनी प्रतिष्ठा गिराए।"

"ठीक है, तुम्हें नरक में जाना पड़ेगा।"

"पर क्यों साहब, मैंने तो समाज-सेवा की है, लोगों की सदा भलाई ही की है।" नेताजी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"एक व्यक्ति कल आया था। वह बता रहा था कि तुमने बाढ़ में डूबते हुए लोगों को छटपटाते हुए हैलिकॉप्टर में बैठकर देखा। वह तो बेचारा पेड़ पर चढ़ गया था, तब कुछ देर के लिए बच गया था, वर्ना'''।"

"पर श्रीमान् हमने ही तो कहा था कि पेड़ लगाओ। हमारी नीतियों के कारण ही तो वह बच गया था।"

"नहीं, तुम्हें नरक में जाना होगा" यमराज ने कहा।

"मुझे तो एक सम्मान-समारोह में जाना है। लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

"सम्मान-समारोह रुक गया होगा। इस वक्त लोग तुम्हारी शोक-सभा मना रहे होंगे।" यमराज बोले।

"मुझे जाने दीजिए साहब, वर्ना मेरा फूल मालाओं का, अभिनन्दन पत्र छप-वाने का, फोटोग्राफरों, और जल-पान आदि का सारा पैसा बेकार चला जाएगा। उन सबका मैंने ठेका दे रखा है।"

"तुम बड़े काइयाँ आदमी हो, तुम्हें माफ नहीं किया जाएगा, यमदूत इसे नरक में डाल दो।" एक यमदूत नेताजी को घसीटता हुआ एक ओर ले चला।

अब की मेरी बारी थी। मैंने हाथ जोड़कर कहा, "मैंने कभी कोई गलत काम नहीं किया। अब इसकी सजा दें या इनाम, यह आप पर निर्भर करता है।"

यमराज बोले—"तुम्हें भी नरक में जाना पड़ेगा।"

मैंने कहा—"हमारे देश में ऐसा समाजवाद अभी नहीं आया है, एक नेता जहाँ गए हैं, वहाँ एक मामूली आदमी को क्यों भेज रहे हैं? मुझे किसी अन्य स्थान पर भेजिए वर्ना नेताजी नाराज होंगे और वैसे मैंने नेताजी जितने महान् कार्य किए भी नहीं हैं।"

"तुमने जीवन-भर सब अच्छे काम किए?"

"जी हाँ, मैंने अपनी समझ में सब अच्छे काम किए। सदैव सच बोला ईमान-

दारी का निर्वाह किया···।"

"क्या तुम इतना कुछ करने के बाद चैन से जिए ?"

"जी नहीं, लोगों ने मुझे बेवकूफ समझा और मुझे सदैव परेशान किया गया।"

"तो इसीलिए तुम्हें नरक में भेजा जाएगा। जब सत्य और ईमानदारी से तुम श्रेष्ठ नहीं समझे गए और सदैव दुःखी रहे तो अब कौन-से स्वर्ग की अपेक्षा करते हो ?"

मैं उनको देखता रह गया, यमदूत मेरी बाँह पकड़कर घसीटने लगा।

● ●

साहित्य साधना

□ अर्जुन 'अरविन्द'

उम्मेदीलाल ने विद्यार्थी-काल में पढ़ा था कि साहित्यकार समाज का पथ-प्रदर्शक होता है, साहित्यकार महान् होता है। तभी से मन में यह बात बैठ गयी कि उन्हें साहित्यकार ही बनना है, महान् बनना है। उम्मेदीलाल हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी थे। कॉलिज में उत्सव था। मुख्य अतिथि के रूप में एक प्रसिद्ध साहित्यकार को बुलाया गया था। मुख्य अतिथि का जिस शान से सत्कार हुआ, उसे अपनी आँखों से देखा तो उम्मेदीलाल की भावना और भी प्रबल हो उठी। उन्होंने भी सुना था कि साहित्यकार के ठाठ बहुत ऊँचे होते हैं। बँगला-कोठी, मोटर और सेवक आदि सभी कुछ होते हैं। एक रचना प्रकाशित होने पर कई सौ पारिश्रमिक के मिलते हैं। कवि-सम्मेलन में जाने पर दो हजार रुपये और प्रथम श्रेणी का किराया। पुस्तक प्रकाशित होने पर हजारों रुपये की रॉयल्टी घर आती है। जहाँ जाओ सम्मान-ही-सम्मान। फिर साहित्यकार तो वह हस्ती है, जिसे मरने के बाद भी पीढ़ियों तक याद किया जाता है। तुलसीदास, कालिदास, सूरदास जैसी हस्तियों को लोग आज भी नहीं भूले हैं। तभी से उम्मेदीलाल के मन-मस्तिष्क में भी भावना बलवती हो गयी कि उन्हें भी साहित्यकार बन दिखाना है और अपने कस्बे, जिले, प्रान्त और देश का नाम रोशन करना है।

विद्यार्थी-काल से ही उम्मेदीलाल को लेखन का जोश चढ़ने लगा। उन्होंने लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु यह कार्य उन्हें दुरूह लगा। फिर भी उन्होंने साहस का दामन नहीं छोड़ा। अपने हिन्दी के प्रोफेसर से मार्गदर्शन प्राप्त किया। राह कुछ आसान होती लगी। उसी वर्ष उनकी एक रचना पहली बार कॉलेज-मैगजीन में छपी। अपने नाम के साथ छपी रचना देखकर उम्मेदीलाल को एक नशा-सा छा गया। हर किसी को वह कॉलिज-मैगजीन दिखाते और अपनी रचना पर प्रशंसा

प्राप्त करने की आशा में उस व्यक्ति का पीछा नहीं छोड़ते।

स्नातक परीक्षा मे उम्मेदीलाल ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। उनके सहपाठी मित्र ने कहा—"उम्मेदीलाल, चलो, दोनों आई० ए० एस० का फार्म भर दें।"

"अपने राम को गुलामी पसन्द नहीं। अधिकारी भी बन जाओ तो क्या है, जीवन-भर पराधीन रहना होता है। मुझे तो साहित्यकार बनकर समाज की सेवा करना है।"

और उम्मेदीलाल ने रात-रात भर जागकर साहित्यिक पुस्तकों और पत्रिकाओं का अध्ययन-मनन शुरू कर दिया। कुछ रचनाओं का प्रसव उनकी लेखनी से हुआ। अपनी रचनाएँ उन्होंने देश की शीर्ष-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजीं, लेकिन सम्पादक के अभिवादन तथा खेद सहित वापस लौट आयीं।

निराशा ने उनके हृदय की चौखट पर अड़ने का बहुत प्रयास किया, परन्तु उम्मेदीलाल ने उसे अपने पास फटकने भी न दिया। उनकी मान्यता थी कि एक दिन सफलता अवश्य उनके चरण चूमेगी।

वहीं से उम्मेदीलाल की साहित्य-साधना शुरू हो गयी। बीसों कहानियाँ उन्होंने लिख डालीं और दो-चार उपन्यास भी। उनकी रचनाओं में प्रवाह था, गहनता थी, लालित्य था और समकालीनता थी, पर किसी बड़ी पत्रिका में उनका प्रकाशन न हुआ। कुछ लघु पत्रिकाओं ने सम्मान-सहित उनका प्रकाशन किया। उनकी रचना-धर्मिता की समीक्षा हुई। फिर एक उपन्यास भी प्रकाशित हुआ, परन्तु प्रकाशक रॉयल्टी मार गया।

दस वर्ष तक अनवरत साहित्य-साधना के पश्चात् उम्मेदीलाल ने अनुभव किया कि उन्होंने बहुत कुछ पाया तथा बहुत कुछ खोया है। इस बीच वह एक अदद पत्नी के पति और तीन बच्चों के पिता बन चुके थे। घर अभावों तथा दरिद्रता से पूरी तरह अंट चुका था। फिर भी मन में एक सन्तोष था कि उन्होंने साहित्य-साधना का पवित्र कार्य किया है। समाज को कुछ दिया है, यही क्या कम है? इसी आत्म-तुष्टि के सहारे उनकी लेखनी अनवरत चलती रही। उम्मेदीलाल सपने देखते और उन्हीं सपनों के सहारे आगे बढ़ने का प्रयत्न करते रहे।

आदमी सपनों के सहारे आखिर कब तक जी सकता है? उम्मेदीलाल का सपना तब टूटा जब आठ वर्षीया बड़ी पुत्री दवा के अभाव में मृत्यु का शिकार बन गयी। सुन्दर और युवा पत्नी दरिद्रता से संघर्ष करती हुई मात्र कंकाल दिखने लगी। शेष दो बच्चे भी कुपोषण के शिकार हो गए और वे स्वयं भी असमय वृद्धावस्था की गिरफ्त में आ गए।

उम्मेदीलाल स्वप्न से जागे तो बहुत देर हो चुकी थी। अब तो राजकीय-सेवा में प्रवेश पाने की आयु भी निकल चुकी थी। उनका सहपाठी मित्र आई० ए०

एस० अधिकारी बन चुका था और अब विभागीय-आयुक्त के पद पर नियुक्त था। वह जब कस्बे मे आता तो उसके पत्नी तथा बच्चों के ठाठ निराले होते। मित्र सुविधाभोगी था और उम्मेदीलाल अभावों की मार सहते-सहते टूट चुके थे। वह आक्रोश, पश्चात्ताप और विद्रोह की आग मे जलने लगे।

गृहस्थी की नौका डूबने को थी। किसी तरह उसे बचाना ही था। अन्तिम आशा लेकर उम्मेदीलाल एक प्रकाशक के पास गए—"मेरे कुछ उपन्यास प्रकाशित कर दें!" किसी तरह साहस जुटाकर बोले—"हो सके तो कुछ अग्रिम दे दीजिए...।"

प्रकाशक अनुभवी था। वह उम्मेदीलाल की प्रतिभा से परिचित था। उसने उम्मेदीलाल को सिर से पाँव तक देखा। फिर मुस्कराकर बोला—"उम्मेदीलालजी, आपके उपन्यास सतही लेखन की उत्कृष्ट रचनाएँ है, लेकिन उन्हें मैं प्रकाशित नही कर सकता।"

"क्यों?"

"इन्हें आजकल पढ़ता कौन है? अगर आप लेखनी से कुछ अर्जित करना चाहते हैं, तो वह लिखिए, जिसे आज के छात्र, महिलाएँ और औसत श्रेणी के पाठक पसन्द करते हैं। मैं समझता हूँ, आप अच्छा और खूब लिख सकते हैं। यदि आप वैसा उपन्यास लिख सकें तो मैं अभी पाँच सौ रुपये आपको आधा एडवांस दे सकता हूँ। उपन्यास आप पन्द्रह दिन मे दे सकते हैं। आप चाहें तो हर महीने आपका एक उपन्यास छप सकता है।"

उम्मेदीलाल अच्छी तरह समझते थे कि प्रकाशक कैसा उपन्यास माँग रहा है। प्रकाशक का प्रस्ताव स्वीकारने को उनका मन तनिक भी न था; वह दूसरे ही क्षण उनकी आँखों के आगे सौ-सौ के पाँच नोट फड़फड़ा रहे थे। पत्नी की साड़ी बच्चों के लिए दूध, दवा, रोटी...। अनायास उम्मेदीलाल के मुख से शब्द निकल गये—'मैं पन्द्रह दिन से पूर्व ही आपको उपन्यास दे दूँगा।"

उसी दिन उम्मेदीलाल का लेखक मर गया पर उम्मेदीलाल जीवित हो गए।

प्रकाशक हर उपन्यास पर उन्हें अच्छी राशि देने लगा। उनके उपन्यास का संस्करण बीस हजार से कम न होता। सैक्सी-पत्रिकाओं में भी उम्मेदीलाल की कहानियों की भरमार होने लगी।

दो ही वर्ष में उम्मेदीलाल ने स्कूटर खरीद लिया है। पत्नी की सुन्दरता और यौवन फिर से लौटने लगा है और बच्चे नई पोशाक मे स्कूल जाने लगे हैं।

मूर्ख-शास्त्र

☐ जगदीश प्रसाद सैनी

[illegible] मैट्रिक
[illegible] भी मेरी
मूर्खता ने मूर्खता पर शोध करने का सपना देखा था। प्रस्तुत 'मूर्ख-शास्त्र' उसी का साकार रूप है। इसमे विभिन्न स्रोतों से मूर्खोपयोगी सामग्री का संग्रह कर समाज के मूर्ख नैतिक पक्ष को मौखिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'मूर्ख-शास्त्र' के प्रणयन मे मैं अपनी मूर्खता का सदुपयोग करने मे कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय तो सुधी-मूर्ख ही करेंगे।

मूर्खता वह है जो मूर्ख द्वारा की जाती है। और मूर्ख वह होता है जो मूर्खता करता है। 'पहले मुर्गी या अण्डा' के अंदाज मे अब सवाल यह उठता है कि पहले मूर्ख पैदा हुआ कि मूर्खता ? बिना मूर्ख के मूर्खता पैदा कैसे होगी और बिना मूर्खता के किसी को मूर्ख कहा जा सकता है ? फिर भी मूर्ख और मूर्खता को 'गिरा-अरथ जल-बीचि सम' अभिन्न नही माना जा सकता। मूर्खता करने वाला मूर्ख ही हो, यह जरूरी नही है। बड़े-बड़े बुद्धिमानो और विद्वानों ने मूर्खताएँ की हैं। कहते हैं न्यूटन ने छोटी और बडी बिल्ली को निकालने के लिए एक ही बक्से में छोटे-बड़े दो छेद बनाए थे। एक महान दार्शनिक घड़ी को खौलते पानी मे डालकर अण्डे मे टाइम देखता रहा। क्या इन महानुभावों को मूर्ख कहा जा सकता है ? जैसे कई लोगों को पाण्डित्य के बिना पंडितजी कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है वैसे ही कई दुर्भाग्यशालियों को मूर्खता किए बिना भी मूर्ख का खिताब मिल जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जैसे ज्ञान की चरम सीमा पर पहुँच कर ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं वैसे ही मूर्खता की चरम सीमा पर पहुँचकर मूर्ख और मूर्खता का भेद मिट जाता है।

मूर्खता का इतिहास बहुत पुराना है। अनुसंधानकर्ता विद्वान मूर्खों ने मूर्खता

के ऐसे अवशेष खोज निकाले हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि मूर्खता मानवता से भी पुरानी चीज है। मूर्खता का शिकार होने के लिए जब धरती पर मानव का आविर्भाव नहीं हुआ था तब पशु-पक्षी मूर्ख होते या बनाये जाते थे। गीदड ने शेर को मूर्ख बनाकर कैसे कुएँ में कुदा दिया, गंगदत्त नामक मेढक ने प्रियदर्शन सर्प को कैसे फँसा दिया, बेर खानेवाले बन्दर का मीठा कलेजा खिलाकर अपनी प्रिया को खुश करने की इच्छा रखनेवाले मगर को उसके बन्दर मित्र ने कैसे मूर्ख बनाया आदि प्राचीन कथा-साहित्य की कहानियाँ इस तथ्य को प्रमाणित करती है।

मूर्खता को मापने के भी लोगों के अपने-अपने मीटर हैं। मैं मूर्ख समझा जाता हूँ क्योंकि मैट्रिक फेल हूँ हालाँकि हमारे जीवन चाचा बी०ए० पास होकर भी लडका को 'लडका' लिखते हैं, शादी को 'सादी' बोलते हैं, सुमित्रानन्दन पन्त के नाम के साथ 'श्रीमती' जोड़ते हैं, हिमालय को अफ्रीका में बताते है, राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ को एक ही समझते है। पर चूँकि वे बी०ए० पास हैं, इसलिए मूर्खता के सारे रेकार्ड 'बीट' करने के बावजूद लोगों की नजर में वे मूर्खता-लेविल से उतने ही ऊँचे हैं जितनी सी-लेविल से एवरेस्ट की चोटी।

इसी प्रकार मास्टर की नजर में छात्र मूर्ख हैं क्योंकि वे उनकी गलत-सलत बातो को चुपचाप न मानकर प्रश्न करते है। छात्रों की दृष्टि मे मास्टर मूर्ख हैं क्योंकि वे उन्हे बिना पढ़े ही पास नही करते। मास्टरों के लिए हेडमास्टर 'सुपर-फ्रेक' है क्योंकि वे उन्हे पढ़ाने के लिए कहता है। हारा हुआ नेता जनता को मूर्ख कहता है क्योंकि वह उसे मूर्ख होने की वजह से वोट नही देती। कालाबाजारियो के लिए ईमानदार इन्स्पैक्टर मूर्ख है क्योंकि वह घूस खाकर उनके केस को रफा-दफा नही करता। मेरे एक स्वजाति बन्धु ने रहस्योद्घाटन किया कि हमारी जाति मूर्ख है क्योंकि उसमें जातिवाद नही है। एक मित्र के पिता एक दिन दुःखी होकर कहने लगे—'तुम्हारा यह दोस्त तो मूर्ख है। इसे समझाओ न! कहता है—दहेज बिल्कुल नही लूँगा। बेवकूफ कही का!' मतलब,यह कि किसी को मूर्ख मानने के सम्बन्ध मे मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना है।

मूर्ख-शास्त्रियों एव मूर्खता के अधिकृत विद्वानों की राय में मूर्ख होना बुरा नही,मूर्खता जाहिर ह[illegible]
का निर्माण किया है, [illegible]
होना है तो चुप रहा जाये—

'दूरात शोभन्ते मूर्खा वस्त्राभूषणं भूषितः
तावत शोभा मूर्खस्य यावत् किंचित न भाषते।'

इस निर्देश का पालन न करने की वजह से मैं कई बार दण्डित हो चुका हूँ। एक बार अपने हिन्दीवाले मास्टर साहब से पूछ बैठा--'गुरुजी, 'बकरी' को 'बकऋ' क्यो नही लिख सकते?' बस, फिर क्या था? उन्होने झट मुझे पहचान

लिया—'तुम मूर्ख हो ! मुर्गा बन जाओ !'

बेशक मन मे मूर्ख और 'जूण' मे दुखी कोई नही होता। जैसे आँखे ससार को देख सकती हैं पर खुद को नही, वैसे ही संसार-भर की मूर्खता को देखनेवाले मूर्ख को भी अपनी मूर्खता नजर नही आती। हर मूर्ख को यह मुगालता है कि मेरे अलावा सब मूर्ख है। हालांकि ऐसे मौके भी आते हैं जब लोग अपनी मूर्खता को सरेआम स्वीकारते है। पर यह स्वीकारना सिर्फ मुंह से ही होता है, मन से नही। उनके लिए अपनी मूर्खता की सार्वजनिक स्वीकारोक्ति अपनी महत्ता को उद्घोषणा का साधन मात्र होती है। 'जो कुछ हुआ, उसकी सम्पूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए, नैतिकता के तकाजे के कारण मैं अपने पद से त्याग-पत्र देता हूँ।' कहने वालो का वास्तविक आशय यह होता है—'जो कुछ हुआ मेरी नही औरो की मूर्खता से हुआ। यह मेरी महानता है कि मैं उनकी मूर्खता का जिम्मा अपने ऊपर लेता हूँ। चूंकि मैं इस धरा-धाम पर अनैतिकता के विनाशार्थ अवतीर्ण हुआ हूँ अतः नैतिकता की स्थापना के लिए मैं औरो की मूर्खता की वेदी पर अपने पद का बलिदान करता हूँ। ससार मेरे इस त्याग को जाने, माने और इतिहासकार शहीदों की सूची मे मेरा नाम दर्ज कर ले।'

अपनी महानता को मूर्खता के पैकेट में 'पैक' करके पेश करने की प्रवृत्ति भी नयी नही है। सूर-तुलसी-केशव जैसे महाकवियो ने अपनी मूर्खता स्वीकार की है—

मैं मूरख जनम गँवायो - सूर
बरनै तुलसीदास किमि, अति मति मन्द गँवार—तुलसी
तिन भासा कविता करी, जडमति केसवदास—केशव

हर कोई जानता है कि ये कवि वास्तव मे महान थे, मूर्ख नही, अतः इन स्वीकारोक्तियो मे उनकी विनयशीलता ही प्रकट होती है, मूर्खता नही। पर उनकी नकल करते हुए आज जो मूर्ख है वे भी अपनी मूर्खता का इजहार इस शान से करते हैं जैसे तो वाकई मूर्ख न हो। सभा-सम्मेलनो के अध्यक्ष पद से बोलनेवाले अधिकाश लोग अपनी जिस मूर्खता का दावा करते है वह प्रायः सही हुआ करता है—'मुझ अकिंचन को आपने जो गौरव दिया, मैं उसके योग्य नही था।' पर मन मे वह स्वय को न केवल इस गौरव के योग्य ही मानता है बल्कि उसका एकमात्र अधिकारी भी समझता है। लोग भी उसके सच को झूठ मानकर उसकी महानता और विनय-शीलता को सराहते नही थकते।

मूर्खों की एक 'कैटेगरी' है—'निर्मित मूर्ख।' यह मूर्खों की जरा हल्की 'क्वालिटी' है। निर्मित मूर्ख मूलतः मूर्ख नही होता, बनाया जाता है। वह ऐसा भोला प्राणी होता है जो सहज विश्वास कर लेता है। फलतः चतुर-चालाक किस्म के लोग उसे मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं। मूर्ख बनाने की कला का

इतिहास भी काफी पुराना है। समुद्र-मन्थन के समय दानवों को मूर्ख बनाया गया, देवताओं ने दधीचि को मूर्ख बनाया, रावण ने सीता को छला, भस्मासुर ने भोले बाबा की बुरी गत बनायी, इन्द्र-चन्द्र ने गौतम ऋषि को मूर्ख बनाकर अहिल्या की अस्मत लूटी और जुए के खेल में मूर्ख बनाकर कौरवों ने पाण्डवों का राज्य हड़पा। कहने का मतलब यह है कि 'देव-दनुज-नर-नारि-मुनि' में से कोई भी मूर्ख बनने से नही बचा। मूर्ख बनाने की आधुनिक पद्धति का सूत्रपात अंग्रेजों ने किया। उन्होंने 'मूर्ख बनाओ, राज करो' की नीति अपनाकर राज किया और जाते-जाते विभाजन के रूप मे हमारी मूर्खता का बेहतरीन तोहफा हमे थमा गये। आज तो मूर्ख बनाने की कला अपने चरमोत्कर्ष पर है। जो इस कला मे जितना माहिर है, वह जीवन में उतना ही सफल होता है; अतः हर कोई 'मूर्ख बनाओ' अभियान में जी-जान से जुटा हुआ है। शायद नौसिखियाओं को मूर्ख बनाने की कला में प्रशिक्षित करने के लिए ही प्रति वर्ष 'फर्स्ट-अप्रैल-फूल' जैसे मूर्ख महोत्सव मनाये जाते हैं और महामूर्ख सम्मेलन जैसे समारोह आयोजित किये जाते है। महामूर्ख सम्मेलनों की मूर्खता का स्तर काफी ऊँचा होता है। बड़े-बड़े लोग खुशी-खुशी स्वेच्छा से मूर्खता का वरण करते हैं और अवसरानुकूल वेश-भूषा से सज्जित हो, मूर्खोचित गरिमा धारण कर बड़ी शान से मंच पर विराजते है। यहाँ मूर्खता भी पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण जैसे अलंकरणों का प्रतिरूप बन जाती है। सम्मानित लोग फूले नहीं समाते और जिन्हें मूर्ख बनने का 'चान्स' नहीं मिलता वे हाथ मलकर पछताते हैं। जैसे शिवजी के अंगो पर लगी श्मशान की राख भी शोभाकारी और पावन हो जाती है, वैसे ही ऐसे अवसरों पर मूर्खता जगत की महान हस्तियों का साहचर्य पा स्वयं धन्य हो उठती है।

भले ही राष्ट्र-प्रेमियों के रहते राष्ट्र-विरोधी तत्त्व खुल कर खेलते रहे हों, पर मूर्खता का इतिहास साक्षी है कि मूर्खता-प्रेमियों ने मूर्खता-विरोधी तत्त्वों को कभी नही बख्शा है। ईसा, सुकरात, गांधी आदि का जो हस्र हुआ, उसे सभी जानते हैं [illegible] ता [illegible] का कोई नया मसीहा जन्म पा जाता है, जो हाथ मे मूर्खता ध्वज उठाकर नारा लगाने लगता है—'दुनिया के मूर्खों! एक हो। तुम कुछ नही खोओगे, सिवा अपनी अक्ल के। हे मूर्ख शिरोमणियो! आज तुम अपनी गौरवशाली मौखिक परम्परा को विस्मृत किये हुए हो। देखो, आज हमारी मूर्खता पर सकट के बादल मँडरा रहे है। जो इस संकट की घड़ी में मूर्खता के लिए बलिदान करने के लिए तैयार नही, वह कायर है, मूर्खता के नाम पर कलंक है। हमारा उद्देश्य है एक स्वतन्त्र मूर्ख समाज का निर्माण— जिसमें मूर्खता के सिवा और कोई न रह सके, मूर्खता के अलावा अन्य किसी धर्म का माननेवाला न रहे। हमारी मातृ-भाषा मूर्खता के अलावा अन्य कोई

भाषा न पढ़ाई जाये। अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हमें मूर्खतापूर्ण ढंग से मूर्खता-आंदोलन चलाना है। एक मूर्खता-वाहिनी का निर्माण करना है, जो मूर्खता-विरोधी ताकतों से टक्कर ले सके। बोलो, 'मूर्ख एकता जिन्दाबाद।' जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीयवाद, भाषावाद आदि सभी वादों की जड़ में मूर्खतावाद ही है, जो जंगल की आग की तरह भड़कता और फैलता है। मूर्खता का नशा सब नशों से खतरनाक है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की जगह जमाना मूर्खता के पुनररुथान की नियति को ढो रहा है। मध्यकाल से लेकर प्रागैतिहासिक काल तक की तमाम मूर्खताओं के जखीरे का भार लादे वैज्ञानिक युग के मानव की जर्जर नौका रक्त सागर में डूबती उतराती इक्कीसवीं सदी का किनारा पाने छटपटा रही है।

एण्टी-मूर्खता शक्तियों की स्पष्ट चेतावनी के बावजूद कि—'खीर न खाजै खारी रे बाला मूर्ख न कीजे मिन्त' आज सबसे ज्यादा मित्र मूर्खों के ही मिलेंगे। मूर्खता से परहेज करनेवाला समाज में अकेला और अलग-थलग पड़ जाता है।

मूर्खता का अक्ल से सनातन वैर रहा है। इसीलिए मूर्ख को अक्ल के पीछे लट्ठ लिए फिरने वाला कहा गया है। यह लट्ठ अक्ल के साथ-साथ अक्ल वालों की भी कपाल-क्रिया कर सकता है। इसी खतरे को ध्यान में रखते हुए विद्वान मूर्खाचार्यों ने सख्त हिदायत दे दी है—'मूर्ख न दीजे सीख।'

मगर मूर्खता के विरुद्ध संघर्ष करने वालों ने किसी खतरे की परवाह नहीं की। अपनी सीख जारी रखी। मेरी दृष्टि में साहित्य का सूत्रपात ही मूर्खता के खिलाफ सीख देने के निमित्त हुआ है। कबीर आदि ने निर्भीक होकर—तमाम तरह की मूर्खताओं की जिस निर्ममता से धज्जियाँ उड़ाई है वह साहित्य के मूर्खता-भंजक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। आदमी-आदमी के बीच कृत्रिम भेद पैदा करने के लिए उन्होंने पोंगा पण्डितों और कठमुल्लाओं की मूर्खता को समान रूप से लताड़ा—

'दुइ जगदीश कहाँ ते आये, कहो कौन भरमाया?'

यह भेद-भाव, यह द्वैत ही सबसे बड़ी मूर्खता है। इस मूर्खता की चक्की के दो पाटों के बीच आज भी आदमी और आदमीयत बुरी तरह पिस रही है और किसी 'कबीरा' को रोना ही नहीं आ रहा।

मूर्खों का एक महत्त्वपूर्ण प्रकार है—'समझदार मूर्ख' जैसे चोरी के धन्धे में सर्वाधिक ईमानदारी चलती है वैसे ही मूर्खता के कामों में समझदारी की सबसे ज्यादा दरकार होती है। समझदार मूर्ख वह मूर्ख होता है जो मूर्खता को समझदारी से सम्पन्न करता है। बड़े-बड़े घूंसखोर, मिलावट और काला बाजारी करने वाले, जुआघर और वेश्यालय चलाने वाले, अपहरण, बलात्कार और हत्या करने वाले, दहेज के लिए बहुओं को जलाने वाले, बैंक लूटने वाले, बड़े-बड़े काण्ड, घपले और घोटाले करने वाले मूर्खों की इसी श्रेणी में आते हैं। ये बड़ी-बड़ी 'रेकार्ड बीट' और

'ब्लण्डर' मूर्खतायें ऐसी समझदारी से करते हैं कि अव्वल तो पकड़ में ही नहीं आते, किसी तरह पकड़े भी गये तो बाइज्जत बरी हो जाते हैं।

मूर्खता के लिए विभिन्न प्रतीकों के प्रयोग का प्रचलन है। इन प्रतीको मे भैंस का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'अकल बड़ी या भैंस' मे अकल के विरोध मे भैंस को रखने का मकसद उसे मूर्खता का प्रतीकत्व प्रदान करना ही है। इसीलिए समझदारो ने 'भैंस के आगे बीन बजाने' का डट कर विरोध किया है। कुछ लोग मूर्ख का प्रतीक लट्ठ को मानते हैं। वज्र मूर्ख के लिए 'लट्ठछाप', 'मूसलचन्द' (मूसल भी लट्ठ का ही परिष्कृत परन्तु सशक्त रूप है) आदि सम्बोधनों का प्रयोग इस मान्यता की पुष्टि करता है। तब तो 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए—'मूर्खता पर मूर्खों का जन्मसिद्ध अधिकार है।

कभी-कभी ऊँट को भी मूर्ख का प्रतीक बनने का गौरव प्राप्त हो जाता है। 'अकल के तोडे ऊँट उभाणा' लोकोक्ति से यह बात प्रमाणित होती है। इस सम्बन्ध मे पशुओं में गधा और पक्षियो मे उल्लू सर्वाधिक 'लक्की' प्राणी रहे हैं। मूर्खता ने इन पर कहाँ तक कृपा की है यह तो शोध का विषय है पर जन सामान्य से लेकर मूर्खता के प्रकाण्ड पण्डितों तक ने इन दोनों को मूर्खता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने मे अपनी उदारता का भरपूर परिचय दिया है। किसी को बड़े-से-बड़े मूर्ख के रूप में सम्मानित करना हो तो उसे 'गधा' कह दो, बात बन जायेगी।

कवियो के प्रतीक जरा 'रिफाइण्ड' है। तुलसी ने इस सम्बन्ध में नारी को 'ओब्लाइज' किया है —'समुझि नारि जड़ सहज अयानी।' बिहारी ने उस आदमी को मूर्खता का प्रतीक माना है जो 'हायिन को वौपार' नही करता और इत्र के गुण-दोष नही जानता। गनीमत है कि वे साहित्य में 'आम आदमी' का झण्डा हिलानेवालों के जमाने में पैदा नही हुए वर्ना छठी का दूध याद आ जाता। कबीर ने अन्धता को मूर्खता का प्रतीकत्व बख्शा है—

'जाका गुरु भी आँधला, चेला खरा निरन्ध।'

मूर्खता के कारणों का विश्लेषण करते हुए समझदारो ने मूर्खों के खोपड़े में भूसा से लेकर गोबर तक भरा होने की परिकल्पनाएँ की है। इन परिकल्पनाओ का आधार शायद मूर्खता का भैंस से सम्बद्ध होना हो सकता है। लोगों का अनुमान है कि मूर्खों के खोपड़े मे भैंस सूक्ष्म रूप में विराजमान रहती है जो भूसा खाकर गोबर करती रहती है। इन परिकल्पनाओ की सत्यता को परखने के लिए प्रयोग जारी हैं।

समय के साथ-साथ जहाँ मूर्खता का बहुमुखी विकास हुआ है वहाँ मूर्खता के मानदण्डों मे भी प्रगति हुई है। आज मूर्ख वह है जो समय का पाबन्द है, जो अपने कर्त्तव्य का पालन निष्ठा से करता है, जो किसी को धोखा नही देता, जो चालबाज और धूर्त नही है, जो घूंस नही खाता है, जो सिफारिश नही मानता है, जो भाई-भतीजों का ध्यान नही रखता है, जो मौके का फायदा नहीं उठाता है, जो बहती गंगा में हाथ नहीं धोता है।

○ ○

अग्रोदय विद्यालय

☐ त्रिलोक गोयल

पात्र

- स्वामी अग्रोहाचार्य —अग्रोहा तीर्थ के पीठासीन
- चौधरी चन्द्रसेन—अग्रोहा तीर्थ के प्रशासक
- श्रेष्ठि लक्ष्मीचन्द—अग्रोहा तीर्थ के नगर सेठ
- विद्यानन्द सरस्वती—अग्रसेन विश्वविद्यालय के कुलपति
- सरदार मोलसिंह—अग्रोहा तीर्थ के महादण्ड नायक
- दिव्य दृष्टि —गुरुकुल माता (छात्रावास प्रबन्धिका)

स्थान

अग्रोहा तीर्थ : वर्तमान हरियाणा राज्य में नवनिर्मित नगर, अग्रवाल समाज के संस्थापक महाराजा श्री अग्रसेन की प्राचीन राजधानी। [अग्रसेनजी को गणराज्यों का प्रथम गणपति, समाजवाद का प्रवर्तक, समन्वय का प्रतीक, सत्य, अहिंसा, न्याय, वीरता, त्याग-तपस्या का पालक माना जाता है। उन्होंने कई रूढ़ियों को तोड़ा तथा नवनिर्माण कराये।]

[अग्रोहा तीर्थ में स्थित भव्य अग्रसेन मन्दिर के प्रा— अनौपचारिक बैठक ! सभी पात्र स्थान बैठे हैं।]

धिकारियों से बहुत ऊपर होता है, क्योंकि धर्म, समाज औ सत्ता तीनों का सम्यक् समन्वय और मार्गदर्शन आप जैसे त्यागी-तपस्वी ही करते हैं। आप हम सभी के लिए श्रद्धेय व वदनीय हैं। अतः कृपया बैठे-बैठे ही अपनी बात कहें।

अग्रोहाचार्य : (बैठते हुए) काश ! आज राष्ट्र में सर्वत्र यह पारस्परिक विश्वास, सद्भाव और विनम्रता का वातावरण होता। महाभागो ! आप सभी इस विराट देश और वृहद् समाज के कर्णधार हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात, विशेष रूप से विगत तीन दशकों से मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि साम्प्रदायिकता, उच्छृंखलता, सामाजिक कुरीतियां, भूख, गरीबी, भ्रष्टाचार आदि ने सम्पूर्ण वातावरण को प्रदूषित कर दिया है। जनजीवन त्रस्त होता जा रहा है, सुख-शान्ति का नामोनिशान नहीं है।

शीलसिंह : महाराजश्री का फर्माना बिलकुल दुरुस्त है। अभी हाल ही में अपने राज्य की सीमा पर बस यात्रियों की नृशंस हत्याएँ की गयी हैं। देश के कोने-कोने में धर्म-सम्प्रदाय, भाषा-भूषा, क्षेत्रों के नाम पर खून-खराबा हो रहा है। आदमी, आदमी नहीं रहा, राक्षस हो गया है।

लक्ष्मीचन्द : इधर भूख-गरीबी-महँगाई-बेरोजगारी, उधर अकाल, नशा, हड़तालें, फैशन परस्ती, विदेशी बैंकों में काले धन का संचय, आदि दिनोंदिन बढ़ने लगे हैं।

चन्द्रसेन : ऊपर से नीचे तक चारों ओर भ्रष्टाचार व्याप्त है। अधिकारियों द्वारा अपराधियों को सरक्षण, वोटों की राजनीति, गुण पूजा नहीं, व्यक्ति पूजा, मैं, मेरा परिवार, मेरा दल पहले देश पीछे, यह गर्हित भावना, श्रम के प्रतिहीनता, छात्र आन्दोलन, अपना दोष, अपनी असफलताएँ दूसरों के मत्थे थोप देना और पराया श्रेय स्वयं ले लेना, ऐसे विनाश के सारे ही लक्षण एक साथ प्रकट हो रहे हैं।

दिव्यदृष्टि : अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, स्पर्धा और झूठी शान ! कोढ़ में खाज दहेज, जिसके कारण निरपराध ललनाओं के जलने-जलाने के पैशाचिक कर्म इस देश-समाज को रसातल में पहुँचाकर मानेंगे।

विद्यानन्द : लक्षणों और परीक्षणों द्वारा अनुभवी लोग रोग तो जान जाते हैं, आप लोगों ने भी जान लिए हैं पर बात निराशा की नहीं, रोगों के निवारण की है। समस्याओं के निराकरण की है। घोर अन्धकार में दीया कौन जलाये ? कैसे जलाये ?

अग्रोहाचार्य : आघात जड़ पर करना चाहिए कुलपति विद्यानन्दजी ! निवारण की स्थिति तो बाद की है, हमें कारण ही नष्ट करना होगा जिससे रोग

उत्पन्न ही न हो। न रहे बांस न बजे बांसुरी।

इन सबका दोषी है कौन? वह दोषी है 'शिक्षण'! शिक्षण शरीर में सचरित होनेवाले उस रक्त के समान है जो देह के हर भाग को पोषित करता है। यदि वह शुद्ध है तो शरीर पुष्ट होगा, यदि वह अशुद्ध है तो शरीर रुग्ण!

विद्यानन्द : आपका कथन शत प्रतिशत सही है गुरुदेव! गुरुकुल वे ढलाई खाने हैं, जहाँ देश का भविष्य ढलता है। विद्यालय वे पावन मन्दिर हैं जहाँ सजीव पत्थरों को घड़ कर देव मूर्तियाँ बनायी जाती हैं।

शीलसिंह : (व्यग्य से मुस्कराकर) ये ढलाई खाने आज देश का भविष्य बना नहीं रहे, बिगाड़ रहे हैं। देव प्रतिभाएँ नहीं, दानवों की मूर्तियाँ घड़ी जा रही हैं। राष्ट्र की नीव होती है युवा-शक्ति, विद्यार्थी वर्ग! आज यह भूली-भटकी पीढ़ी प्रलयंकर शकर की तरह महाविनाशक हो रही है।

अग्रोहाचार्य : माखन मथने से ही निकलता है! तो अब आप सब लोग इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि शिक्षा ही राष्ट्र की आधारशिला है, रीढ़ है! जिस देश की शिक्षा दोषपूर्ण होगी उसकी उन्नति और जिसकी निर्दोष होगी उसकी अवनति हो नहीं सकती।

चन्द्रसेन . आश्चर्य है कि सत्य का सूर्य हम अब तक क्यों नहीं देख पाये! अपेक्षित सफलताएँ न मिलने पर झण्डे, पण्डे, डण्डे, हथकण्डे सब कुछ बदलने पर मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यो दवा की। रोग मिटे तो मिटे कैसे? दर्द पेट में और बाम मली जा रही है सर पर। आगे बढ़ने की जगह पिछड़ रहे हैं, और सुनहरी सपना देख रहे हैं।

लक्ष्मीचन्द . पर चौधरी साहब! क्या झण्डे पण्डे बदलने के साथ-साथ शिक्षा नीति को नहीं बदला गया?

चन्द्रसेन : हाँ बदला तो गया है। कई बार बड़े-बड़े शिक्षा आयोग बैठाये गये हैं! राधाकृष्णन आयोग, कोठारी आयोग वगैरह पर दुःख यही है कि परिणाम वही ढाक के तीन पात!

दिव्यदृष्टि : इसलिए कि—

संस्कृति, नीति, जीविका बिसरी, यही मूल मे भारी भूल।
शिक्षा और परीक्षा मे हो, रोटी-विमल कमल का फूल॥
तक्षशिला, नालन्दा देखो, देखो ऋषियो के आश्रम।
साधन सीमित, साध्य उच्च हो, हटे विदेशी शिक्षा क्रम॥
ऐसी शिक्षा हुए विना राम-कृष्ण, लव-कुश हो नहीं सकते।
आज विद्यार्थी का अर्थ विद्या की अर्थी ले जानेवाला हो गया है।

विद्यानन्द : और अब तो हमारे युवा प्रधानमन्त्री शिक्षा मे आमूल चूल परिवर्तन

करने के लिए नयी शिक्षा नीति चालू कर रहे हैं। दस जमा दो की पद्धति, गरीब देश में करोड़ो की लागत के नवोदय विद्यालय। शायद इस शैक्षिक क्रान्ति से कुछ बदलाव आये!

अग्रोहाचार्य : बदलाव जरूर आयेगा! वह बात दूसरी है कि वह शुभ होगा या अशुभ। इसका निर्णायक होगा समय!

सुसंस्कार, विनय दे विद्या, शिक्षक को सम्मान मिले।
विकसित हो मस्तिष्क-हृदय, साहित्य-कला के सुमन खिलें।।
गुरु में गुरुता हो, आदर्श चरित्रों का निर्माण करे।
श्रम, शुचिता, स्नेह, समता हो तब यह हिन्दुस्तान तरे।।

आदर्श और व्यवहार का तालमेल हुए बिना काम नहीं चलने का! अग्रोहातीर्थ में ऐसी शिक्षा चलानी है, जो महाराज श्री अग्रसेन की समता, ममता और क्षमता को अपनाकर कीर्तिमान स्थापित कर सके।

विद्यानन्द : उस सद्शिक्षा का स्वरूप जानने के लिए ही तो हम सब उत्सुक है आचार्य प्रवर!

अग्रोहाचार्य : (मुस्कराकर) आप विद्यानन्द है (दिव्य दृष्टि की तरफ संकेत कर) मातः श्री दिव्य दृष्टि हैं, शिक्षा क्षेत्र का आप लोगों का पर्याप्त अनुभव है। शिक्षा नीति कैसी हो इस सन्दर्भ में आपने अपनी कविताओं के माध्यम से मेरी भावनाओं के अनुकूल ही प्रकाश डाला है! जिस तरह [illegible] में झाँसी की रानी [illegible]; उसी तरह अग्रोहा [illegible] हो रोटी और कमल का फूल।

दिव्यदृष्टि [illegible] र देश और [illegible] विका और [illegible]

विद्यानन्द [illegible] यात्मिकता, [illegible], सन्तुलित [illegible]

अग्रोहाचार्य : गुरु को गुरु बनना होगा, गुरु बनाना होगा। गुरु का अर्थ है बड़ा, महान। एक साधारण पेट भरने-वाले जीव से उसे ऊपर उठना होगा, आदर्श बनकर बताना होगा।

शीलसिंह : (हँसकर) हम तो सिपाही है महाराज! लट्ठ मार भाषा जाननेवाले, गूढ़ तत्व की बातें क्या जानें! आप तो स्पष्ट आदेश दीजिए कि किस-किसको क्या-क्या करना है।

अग्रोहाचार्य : (आदेशात्मक स्वर में) चौधरी साहब ! आप इस देश के प्रशासक हैं, सबसे अधिक दायित्व आप पर आता है। आप अपने क्षेत्र में कुछ 'अग्रोदय विद्यालय' खोलें जिनमें साधनों पर कम साध्य पर अधिक बल दिया जाये। निर्जीवों और सजीवों पर अधिक ध्यान दें। आदमी से बड़ा कुछ नहीं है, जनहित को सर्वोपरि मानें, विद्यालय आत्म निर्भर, अध्यापक आश्वस्त और छात्र राजनीति से दूर हों। आवश्यकतानुसार सभी से योगदान लें। सबको लगे कि ये शालाएँ हमारी हैं।

चन्द्रसेन : (नतमस्तक हो) जो आज्ञा गुरुदेव ! प्रशासक, पूँजीपति और जनसेवी संस्थाएँ मिलकर शीघ्र ही इसकी व्यवस्था करेंगे।

अग्रोहाचार्य : अग्रोहा विश्वविद्यालय के कुलपति श्री विद्यानन्दजी सरस्वती और गुरुकुल माता श्रद्धेया दिव्यदृष्टि जी, एक पखवाड़े भर में ऐसी शिक्षा नीति निर्धारित करें, पाठ्य-क्रम और विधान बनायें जो मस्तिष्क से अधिक हृदय का विकास कर सके। सबको सुख, सुविधाएँ और सन्तोष मिले। भविष्य के प्रति निश्चिन्त हों। मात्र वर्तमान जीवी न होकर दूर तक देख सकें। बच्चे-बच्चे में यह भावना भरें कि परिश्रम और ईमानदारी से बड़ा कर्तव्य नहीं है और सबके प्रति अपनत्व रखने से पुनीत न कोई पुण्य है, न धर्म ! आदर्शों को व्यावहारिक बनाना और मानवीयता को महत्व देना है। आवश्यकता समझें तो समय-समय पर मुझसे परामर्श लेते रहें ! मेरी कुटिया के द्वार सदैव आप लोगों के लिए खुले हैं।

दिव्यदृष्टि : आपने देश, समाज के लिए जीवन-हवन किया है पूज्यपाद ! आपका मार्ग-दर्शन हमारे लिए अमोघ वरदान होगा।

विद्यानन्द : आपने हमारा मार्ग सुगम और प्रशस्त किया है, आपको साधुवाद है ! सब कुछ आपके आदेशानुसार ही होगा !

अग्रोहाचार्य : और सरदार शीलसिंहजी ! आपको अनुशासन और शान्ति बनाये रखना है। इसके बिना किसी प्रकार का विकास नहीं होता। पारस्परिक विश्वास होना बहुत जरूरी है। जहाँ अपराधियों को दण्डित और अयोग्यों की भर्त्सना करना आवश्यक है वहाँ प्रतिभा सम्पन्न और योग्य व्यक्तियों को [illegible] कर प्रोत्साहित [illegible] आवश्यक है !

वह सुविधा भर जुटा दें कि हर हाथ को काम और हर मुंह को निवाला मिल सके ! जब जीवन का अस्तित्व खतरे में नहीं होगा, जब शिक्षा में शक्ति और आकर्षण होगा तो कौन हतभागी बहती गंगा में हाथ नहीं धोयेगा !

लक्ष्मीचन्द : सत्य वचन महाराज ! पटरी से उतरी गाड़ी को एक बार लाइन पर लाना ही कठिन है, फिर तो वह सरपट दौड़ेगी !

अग्रोहाचार्य : तो सब कुछ निश्चित हुआ ! सबके लिए दिशा निर्धारित हुई ! हर व्यक्ति अपने-अपने काम में जुट जाये, सफलता निःसन्देह है। कार्य की योजना बनाओ, योजना पर कार्य करो ! ईश्वर कल्याण करे। बोलिए श्री अग्रसेन महाराज की···

सब : जय।

अग्रोहाचार्य : अग्रोहा नरेश की···

सब : जय।

: पटाक्षेप :

○ ○

अभी तो मैं मरा नहीं

□ गौरीशंकर आर्य

पात्र : रावण…लंका का राजा
भगवान शंकर

स्थान : एक वन प्रदेश

समय : दिन

[सामने परदे पर जंगल का दृश्य है। दूर एक नगर दिखायी दे रहा है, जिसके एक भाग मे रावण का पुतला रस्सियो से बँधा दिखायी देता है। एक वृक्ष के नीचे रावण पद्मासन लगाये नेत्र बन्द किये…"ॐ नमः शिवाय" का जाप कर रहा है। सामने लाल कपड़ों से बँधी दो पुस्तकें एक चौकी पर रखी हैं। रावण ने धोती और मूल्यवान उत्तरीय धारण कर रखा है। मस्तक पर मुकुट है। भुजबन्ध, बड़े मोतियो की मालाएँ तथा जनेऊ दीख रहे है। धोती के ऊपर कमर मे केसरिया दुपट्टा अलग से बँधा है। ललाट पर त्रिपुण्ड है। मूछे गहरी और मुड़ी हुई तथा केश कन्धों के पीछे लटके हुए। पौराणिक पारम्परिक वेष मे भगवान शंकर का प्रवेश]

शंकर : लंकेश ! हम आ गये वत्स ! आज इतनी व्याकुलता से क्यो याद किया ?
रावण : (चौंककर नेत्र खोलते हुए भगवान शिव के चरणो में दण्डवत प्रणाम के

साथ-साथ) पाहि माम् आशुतोष, पाहि माम्। ...

शंकर : उठो वत्स, तुम्हारा कल्याण हो। आज तुम्हारे मन में इतनी पीड़ा क्यों है? ऐसा तो कभी नहीं हुआ। चारों वेद-वेदांग और षडदर्शन में पारंगत "दशानन" जैसी सर्वोच्च प्रज्ञा-उपाधि से अलंकृत, परमवीर दशग्रीव को इतनी व्यथा हो जाना, आश्चर्य है।

रावण : प्रभो, उधर देखिए! आज आश्विन शुक्ला दशमी है न। विजयादशमी के नाम पर मेरा पुतला जलाया जाने वाला है। प्रति वर्ष यही होता है। स्वामी! मेरा ऐसा अपमान क्यों है? क्या दोष है मुझमें?

शंकर : अकारण कोई कार्य नहीं होता लंकेश! जिस व्यक्ति में अभिमान, दम्भ, आत्मश्लाघा की लिप्सा, और परदारा-हरण जैसे दुराचरण के दर्शन हों उसका तो अपमान ही होगा न।

रावण : (व्यथित स्वर में) यह...यह आप कह रहे हैं भूतेश्वर, अब मैं क्या निवेदन करूँ।...प्रभो, आप मेरे उपास्य भी हैं और पूज्य गुरु भी। कृपा करके आप ही मुझे मेरे दोषों से अवगत करा दीजिए, क्योंकि मनुष्य अपने अवगुण स्वयं नहीं देख सकता। मुझे मेरे अपराध एक-एक कर बताइए देव! कि वे क्या हैं और उनका प्रमाण क्या है। स्वामी, दाह-दण्ड-प्राप्त अपराधी को अपने दोष-विमोचन का अवसर प्रदान करना न्याय संगत ही माना जाएगा।

शंकर : भारत के रामभक्त तुम में कितने और किस प्रकार के दोष देखते हैं यह तो वे ही जानें किन्तु सामान्यतः तुम पर अभिमान, दम्भ, आत्म प्रशंसा, हठ और परस्त्री-हरण जैसे आरोप लगाये जाते हैं। किन्तु सबसे बड़ा दोष तो श्रीराम से विरोध करना माना जाता है। राम-विरोधी तो भारतीय जन-गण-मन सहन नहीं कर सकता। रही प्रमाण की बात, तो रामकथा के बहु-प्रचलित और चर्चित ग्रन्थ दो ही हैं; महर्षि वाल्मीकि की 'रामायण' और महाकवि तुलसी का "रामचरित मानस"। इनमें भी संस्कृत में होने से रामायण सबके लिए नहीं रही, जबकि प्रासाद से पर्णकुटी तक रामचरित मानस की पताका फहरा रही है। तुम्हारा पुतला जलानेवाले लोग प्रायः रामचरित मानस के ही अध्येता हैं। अतः प्रमाण के लिए वही ग्रन्थ उनके सामने रहता होगा।

रावण : और स्वयं तुलसी के अनुसार यह वही "मानस" है, जिसे आपने रचा और आदरपूर्वक अपने मानस में रख लिया था। फिर सुसमय आने पर आपने माता पार्वती को सुनाया था। तुलसी ने कहा है—

रचि महेस निज मानस राखा।
अवसर पाइ सिवा सन भाखा ॥

शंकर तुम्हारा कथन सत्य है।

रावण प्रभो, यद्यपि मे उक्त दोनों पावन ग्रन्थ साथ मे ले आया हूँ, परन्तु आपसे अधिक सत्य प्रमाण अब और क्या होगा। हे महेस, क्या इस सेवक को आप कृपा करके निज दोष-विमोचन का अवसर प्रदान करेंगे? किन्तु पहले मैं श्रीचरणों से अभय की कामना करता हूँ।

शंकर तुम अभय हुए पुत्र, निस्संकोच अपनी बात कहो।

रावण (प्रणाम करके) अनुगृहीत हुआ देव।...क्षमा करो प्रभो, यदि रामचरित मानस के आधार पर ही मुझ पर आरोप लगे है तो उसी ग्रन्थ के प्रमाणो से मैं दोष-विमोचन की अनुमति चाहता हूँ। अस्तु...विषय प्रवेश से भी पूर्व दो बातें कहना चाहूँगा। प्रथम—मैं और मेरा भाई कुम्भकर्ण दोनो आपके ही तो सेवक थे। शीलनिधि राजा की कन्या को प्राप्त करने की हास्यास्पद चेष्टाएँ जब महर्षि नारद ने की थी तो उनकी वानर मुखाकृति को देखकर हम दोनो हँसी नही रोक सके और मुँह से कुछ निकल ही पड़ा—

तँह बैठे महेश-गन दोऊ। विप्र वेष गति लखइ न कोउ ॥
करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुन्दरताई ॥
रीझहि राजकुँअरि छवि देखी। इन्हहिं बरिहि हरि जानि विशेषी ॥

अन्त मे असफलता से खिन्न नारद ने हमे देखकर श्राप दे दिया—

होउ निसाचर जाइ तुम कपटी पापी दोउ ॥

इस शाप को सुनकर हमने उनके चरणो मे पड़कर क्षमा माँगी और अपना परिचय दिया तो नारदजी ने हमे त्रिलोक विजयी और बलवान बनने का वरदान दे दिया। भला नारद की वाणी कभी असत्य हो सकती है! अतः वही हुआ।

हर-गन हम, न विप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह, फल पाया ॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीन दयाला ॥
निसिचर जाइ होउ तुम्ह दोऊ। वैभव विपुल तेज बल होऊ ॥
भुजबल विश्व जितब तुम जहिआ। धरिहहिं विष्नु मनुज तन तहिआ ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत, न पुनि ससारा ॥

और दूसरी बात यह, कि यदि मैं श्रीराम का विरोधी न बनता तो उनके हाथो मेरी मृत्यु नही होती और तब महर्षि नारद की वाणी भी असत्य

हो जाती। अतः वह तो भवितव्यता ही थी, जिसका मुझे ज्ञान था।

अब मैं अपने दोष-विमोचन के लिए सादर नम्र निवेदन कर रहा हूँ—कि मानस मे मेरी वाणी प्रथम बार तब सुनायी देती है जब जीवन भर के लिए कुरूप कर दी गयी मेरी बहिन सूर्पनखा ने मेरी भरी सभा मे विलाप किया और मैंने अपना बल बताकर उसे धैर्य दिया। और मैं करता भी क्या। मेरे स्थान पर कोई और होता तो शायद वह यही तो कहता कि बहिन रो मत, मैं यह कर दूंगा—वह कर दूंगा आदि। परन्तु मुझे गहरी चिन्ता हो गयी थी। यो तुलसी ने भी मेरे लिए इतना ही कहा है—

सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नीद परहिं नहि राति॥

चिन्ता का कारण यह भी था कि खर-दूषण जैसे महावीर श्रीराम ने मार डाले थे परन्तु प्रसन्नता भी थी कि पाप-योनि से मुक्ति का समय शायद आ गया है। मुझे नारदजी का वरदान याद आ गया कि विष्णु के अवतार से ही मेरा मरण रणभूमि में होगा। मै सोचने लगा कि—

खर दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
सुर रंजन भंजन महि भारा। जो भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तो मैं जाइ बैर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम वचन मन्त्र दृढ़ एहा॥

तामसी वृत्तियो के कारण ईश्वर-भजन और भक्ति सम्भव नही जानकर ही मैंने मन, वचन और क्रम से हठ और शत्रुता करने की दृढ़-प्रतिज्ञा कर ली थी। और इसी कारण तो मैंने सीता देवी का हरण किया था क्योकि इसी कुकृत्य मे तो राम मुझे प्राणदण्ड दे सकते थे। मैंने इन्द्रपुत्र जयन्त का प्रसंग सुन लिया था कि राम अपनी प्रिया सीता को कष्ट पहुँचानेवाले को कभी क्षमा नही करते है। क्षमा करे देव, मानस रचकर भी शायद आपको याद नही है। यो आपने देख लिया होगा। तुलसी गवाह हैं कि सीता को स्पर्श करने के पूर्व मैंने उनके चरणों मे मन-ही-मन प्रणाम किया था।

सुनत वचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥

और यह ढंग मैंने स्वयं श्रीराम से ही सीखा था, जब उन्होने आपका धनुष तोड़ा था—

गुरुहि प्रनाम मनहि मन कीना। अति लाघव उठाइ धनु लीना॥

और, अविनय क्षमा हो प्रभो, जब आपका विवाह हो रहा था तो वरासन

पर बैठने से पूर्व आपने भी अपने उपास्य श्रीराम का स्मरण (नमन के साथ) किया था। माता पार्वती को देवताओं ने भी मन में ही प्रणाम किया था।

> बैठे सिव विप्रन्ह सिर नाई। हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥
> जगदम्बिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥

अस्तु, मैंने भी माता सीता को मन-ही-मन प्रणाम कर लिया था। जिसके चरणों में प्रणाम कर लिया जाए उसमें पत्नी भाव कैसे हो सकता है! एक प्रमाण और भी है स्वामी। वाल्मीकि की साक्षी प्रस्तुत है। हनुमान जब सीताजी की खोज में लंका आये तब उन्हें मेरे अन्तःपुर की प्रत्येक स्त्री की पूरी जाँच-पड़ताल करनी पड़ी। क्योंकि उन्होंने सीता को देखा ही नहीं था। अतः वह ऐसी स्त्री की तलाश में थे,जो वहाँ बलपूर्वक रखी हुई हो! परन्तु'''आत्मश्लाघा मत समझना पूज्य,'''वहाँ उन्हें न तो "पूर्व कामा"

[मेरे महल में आने से पूर्व वह अन्य किसी की कामना कर रही हो]

और न "अन्यकामा"

[मेरी पत्नी बनने के बाद भी किसी अन्य को चाहती हो]

ही रमणी मिली। सभी ने स्वेच्छा से मेरा वरण किया था। क्या इससे मेरे आचरण का कोई पवित्र संकेत नहीं मिलता? दोनों ग्रन्थों के दो प्रमाण सेवा में सादर प्रस्तुत हैं, देव!

श्री राम का विरोधी मैं क्यों बना और माता सीता के प्रति मेरे क्या भाव थे यह मैंने निवेदन किया। अब आपका ध्यान मैं आदर पूर्वक विभीषण की तरफ आकृष्ट करना चाहता हूँ। यदि मैं राम का विरोधी ही होता तो क्या अपने भाई विभीषण को श्रीराम का स्मरण करते या उनकी भक्ति करते सह सकता था! सीता-हरण के पूर्व से ही वह प्रति प्रातः उठकर श्रीराम-नाम का जाप करता था। उसके भवन के द्वार पर रामायुध के चिह्न अंकित थे। तभी तो लंका में छिपकर आये हनुमान ने यह सब देखा था—

> रामायुध अंकित, गृह सोभा, बरनि न जाइ।
> नव तुलसिका वृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥
> मन महुँ तरक करै कपि, लागा। तेही समय विभीषन जागा॥
> राम नाम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि, सज्जन चीन्हा॥

शंकर: यह भी तो सम्भव है कि तुम्हें विभीषण की गतिविधि ज्ञात न हो।

रावण : समझ गया स्वामी, यही सही, किन्तु जब हनुमान लंका को जलाकर चले गये तब भी क्या मैंने अपने नगर का अवलोकन नहीं किया होगा ! अपने परिजनों की सँभाल नही की होगी ! भूतभावन, मैंने अपनी आँखो से देखा था कि लका में केवल विभीषण का घर ही अछूता बचा था।

जारा नगर निमिष एक माही। एक विभीषन कर गृह नाही ।।

मुझे सारी लंका को जली हुई और केवल विभीषण का घर बचा देखकर क्रोध और शका हो जाना अस्वाभाविक तो नही था। इसी आवेश में मैंने उसकी किसी बात पर ध्यान नही दिया तो यह सहज स्वाभाविक है स्वामी ! परन्तु वास्तविकता तो यही थी कि मैं किसी भी व्यक्ति की ऐसी बात सुनना और मानना नही चाहता था जिसमें सीता को वापस लौटा देने की सलाह हो, क्योंकि सीता को प्राप्त करते ही श्रीराम मुझे क्षमा करके लौट जाते। फिर मेरा मरण उनके हाथो कैसे होता ?

यही कारण था कि मैंने माल्यवन्त, विभीषण, मन्दोदरी आदि किसी की बात नही मानी। लंका-दहन से सारे राक्षस मन-ही-मन घबरा उठे थे। उन्हे आशंका हो गयी थी कि अब सब मारे जायेंगे.

निज-निज गृह सब करहिं विचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा ।।

मन्दोदरी को भी नगरवासियो की घबराहट की सूचना मिली तो मेरे महल मे पहुँचते ही उसने भी वही बात कही—

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला ।।
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही ।।

भला मैं उसे कैसे समझाता कि मैं स्वयं राम के हाथों मरना चाहता हूँ और मेरे इस कथन को वह कैसे सह सकती थी ! इसलिए मैं उसको यह कहकर चल दिया—

कँपहि लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा ।।

इसके अतिरिक्त मैं उसका मन प्रसन्न करने के लिए क्या कह सकता था। राज्य सभा में गया तो वहाँ भी विभीषण का वही उपदेश मिला। उसको देखते ही मेरे मन में एक विचार आ गया कि विभीषण ही मेरी मृत्यु का रहस्य जानता है। जब तक यह मेरे पक्ष में है श्रीराम मेरा वध नही कर सकेंगे।···आपका ही तो वरदान था प्रभो। अतः मैंने उसके उपदेश पर भयकर बनावटी क्रोध प्रकट कर उसे लात मारकर घोर अपमानित करके

(सकेत मे) श्रीराम से मिल जाने और रहस्य कह देने की बात कह दी थी।

[ताकि अपमानित होकर विभीषण आत्महत्या कर ले या अन्यत्र चले जाने के बजाय सीधा मेरे शत्रु राम के पास चला जाए और मेरी मृत्यु से अपमान का बदला चुका ले]

कहसि न खल अस को जग माही। भुजबल जाहि जिता मैं नाही ॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥

और प्रभो, मेरी चाल काम कर गयी। जब श्रीराम मेरे मस्तक काटते-काटते थक गये तो उन्होंने विभीषण की ओर देखा। तभी विभीषण के मुख से निकल पड़ा—

नाभि कुण्ड पियूष बस याके। नाथ जिअत रावण बल ताके ॥

बस, फिर क्या था श्री राम ने इकत्तीस बाण एक साथ छोड़े और—

सायक एक नाभि-सर सोषा। अपर लगे भुज-सिर करि रोषा ॥

और उसी समय मेरे जीवन का अध्याय समाप्त हो गया।

शकर : हाँ, यह सब मुझे याद है किन्तु तुम्हारे दम्भ का एक उदाहरण तो है ही। जब श्री राम समुद्र पर पुल बाँधकर लका के किनारे आ पहुँचे तब तुम्हे चिन्तातुर हो युद्ध या सन्धि का कोई भी उपाय सोचना था, किन्तु तुमने पर्वत-शिखर पर नृत्य सगीत का आयोजन किया। यह दम्भ नही तो क्या था?

रावण : हे त्रिपुरारि, आप स्वय रणपण्डित है। मैं क्या निवेदन करूँ, आप मेरी बात को प्रगल्भता समझ लेगे फिर भी मेरा निवेदन है कि ज्यो ही राज्य-सभा के बीच मैने यह सूचना सुनी कि राम इस पार आ गये तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। मै विश्वास ही नही कर सका कि समुद्र पर पुल बन गया। इसी घबराहट मे मैंने दस बार पूछ लिया। जैसे किसी अति प्रिय के अनिष्ट की सूचना पर कोई पूछता जाता है—क्या वह अमुक नाम? उनका पुत्र? वह गोरा लम्बा-सा? क्या वही जो अभी कल ही लौटा है? आदि। मेरी इस घबराहट को सभासदो ने भाँप लिया। और युद्ध काल मे राजा की यह घबराहट अन्य का साहस नष्ट कर देती है। इसी घबराहट से उत्पन्न मेरे नागरिको तथा सेना नायको के गलित उत्साह को पुनर्जीवित करने के लिए अपनी निर्भयता और उपेक्षा का स्वाग मुझे भरना पड़ा था। इससे मेरे वीरो का गिरा हुआ मनोबल फिर उठ गया। यह आवश्यक था स्वामी।

शंकर : (मुस्कुराकर) बहुत चतुर और दक्ष राजनीतिज्ञ हो तुम दशानन ! अच्छा अब और कुछ कहना है तुम्हें ?

रावण : एक विनम्र निवेदन और है आशुतोष । मेरा वध जब श्री राम ने किया उस समय आप और पितामह ब्रह्मा वहीं कहीं उपस्थित थे, ऐसा रामभक्त कवि तुलसी ने लिखा है। मृत्यु के समय मेरा तेज याने आत्म ज्योति श्रीराम के मुखारविन्द में समा गयी थी जिसे देखकर आप दोनों बहुत प्रसन्न हुए थे। मेरी मृत्यु के दृश्य को कृपया याद कीजिए।

धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा । तब सर हति प्रभुकृत दुइ खण्डा ।।
तासु तेज समान प्रभु-आनन । हरषे देखि संभु चतुरानन ।।

हे गिरिजापति, कृपया बताइये, सम्पूर्ण रामचरितमानस में भाई कुम्भकर्ण को छोड़कर कौन भाग्यशाली है जिसकी आत्मा परमात्म रूप श्रीराम में मिल कर एकाकार हो गई ?

शंकर : निस्सन्देह, इस प्रसंग में तुम से बड़ा भाग्यवान कोई नहीं है।

रावण : अनुगृहीत हुआ प्रभो (हाथ जोड़ता है), तब फिर मैं पापी दुराचारी कहाँ रहा ? सारे जीवन भर के तथाकथित अवगुणों के उपरान्त भी जब श्रीराम ने मुझे अपनी आत्मा में समेट लिया तो अब मैं अपराधी, पापी, दुराचारी कहाँ रहा ? गंगा में मिल जाने के बाद गन्दी नाली भी पूज्या हो जाती है देव ! जिसे स्वयं श्री राम ने अपने हृदय में बसा लिया उसका अपमान क्या श्री राम का ही अपमान नहीं ?

शंकर : श्री राम का अपमान करने वाला मेरा भी घोर शत्रु है (त्रिशूल उठाते हैं) बोलो, क्या दण्ड दे दूँ इन लोगों को ?

रावण : (चरणों में पड़कर) शान्त महाकाल, शान्त हो जाइये ! क्या आप भी मेरे मन की पीड़ा को समझना नहीं चाहेंगे ?

शंकर : क्या चाहते हो तुम ?

रावण : हे मदन-मद-मोचन, मैं इन लोगों को दण्डित देखना नहीं चाहता क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं, यदि आत्मश्लाघा नहीं मानी जाए तो मेरा निवेदन है कि इन्हें आप सद्बुद्धि प्रदान कीजिए। मेरा पुतला जलाते समय ये सब श्री राम का नाम लेकर उनकी जय तो बोलते हैं, मैं भी तो यही चाहता हूँ कि भारत के नर-नारी प्रत्येक श्वास में श्री राम के नाम का उच्चारण करें। वर्ष भर में एक दिन ही सही मुझे अपमानित करने के बहाने ये लोग श्री राम का स्मरण तो कर लेते है यही मेरा परम सौभाग्य है। परन्तु मेरी पीड़ा तो कुछ और है। श्री राम के राज्य की कल्पना करने वाले ये असमझ लोग दो पल मेरे राज्य को ही देख लें। क्षमा हो महेश,

हनुमान ने जब प्रथम बार लका देखी तो वह भी चकित हो गये थे।

गिरि पर चढ़ लका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग विशेषी॥
अति उत्तग जलनिधि चहुँ पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा॥

बन बाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहही।
नर नाग सुर गधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहही॥
कहुँ माल देह विसाल सैल समान अति बल गर्जही।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुविधि एक एकन्ह तर्जही॥

मेरे नगर का परकोटा सोने का बना था। इससे यह तो सिद्ध है ही कि मेरे राज्य मे स्वर्ण (धन) की अति थी। मेरे देश के युवक पर्वत के समान विशाल दृढ़ वक्ष वाले थे, मेरे राज्य मे जहाँ जैसी आवश्यकता थी, तालाब, कुए, बावड़ियाँ आदि भरी थी। सभी जातियो की कन्याएँ निर्भय होकर विचरती थी। उनकी निडर अवस्था के कारण ही उनका रूप खिला हुआ रहता था और...(गर्दन झुकाकर मुस्कराट के साथ) कुछ लोगो का तो ऐसा भी मानना है कि मैंने वृद्ध लोगों के लिए भी ऐसी समुचित व्यवस्था कर दी थी कि वे भी पौष्टिक सन्तुलित आहार के कारण 'नाना' बन जाने की आयु में भी अखाडो मे मल्ल युद्ध किया करते थे। अकाल मृत्यु न होना ही यम का मेरे अधीन होना था। कही अग्निकाण्ड न हो, दावा न भभक उठे यह मेरी अग्नि पर विजय थी। समय पर आवश्यकतानुसार वृष्टि हो, यही मेरा भय था वरुण को। न आँधी आएं न प्राणवायु में कमी हो—इसी रूप मे वायु मेरी शरणागत थी। मेरे राज्य की ये कुछ अच्छी बातें ही सीख लेते भारतवासी! हे स्वामी क्षमा करें—मैं लगे हाथ कह रहा हूँ—"कहउँ स्वभाव न कुछ अभिमानू" क्योकि इसी एक उक्ति के कारण मानस के अन्य पूज्य पात्र आत्मश्लाघा दोष से बच गये हैं।

शकर : बस केवल यही चाहते हो?

रावण : हाँ, इतना भी और कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण भी, अवढरदानी!

शंकर : और महत्त्वपूर्ण क्या है?

रावण : सबसे मूल्यवान यह निवेदन कि—"मैं कितना पापी हूँ" इस पर न्यायपूर्ण विचार करके ये मेरा पुतला जलाएं...और...

शकर : देखो दशानन, जहाँ तक मैं सोचता हूँ, तुम्हारे प्रति जो राम भक्तों में रोष है वह परस्त्री हरण के कारण है। फिर सीता तो जगदम्बा हैं।

रावण : अवश्य प्रभो, जगज्जननी सीता श्री राम की प्रिया हैं और सीता श्री राम के चरणों की श्रद्धानत सेविका हैं। परन्तु जिस महिला को श्री राम प्रणाम

करे वह ऋषि पत्नी तो देवी सीता से भी अधिक पूजनीया होना चाहिए-न !

शंकर : अवश्यमेव, भला यह भी कोई कहने की बात है।

रावण : हे महादेव, कहने की बात तो यह है कि गौतम जैसे महर्षि की पत्नी अहल्या के साथ धोखे से समागम कर लेने वाला मघवा आज भी स्वर्ग के सर्वोच्च आसन पर आसीन है और उसके कुकृत्य में सहयोग करके स्वयं पृथक् सकलंक होकर भी *महिलाओं के ही द्वारा पूजा जाता है*। तभी तो यह है स्वामी, कि उच्चतम कहाने वाले नीच-कर्मी कभी दोषी नही होते। नर नहीं अमरों का शासक निकृष्टतम पाप करके भी आदरणीय रहता है। उसके दोष देखे नही जाते। उसके अवगुण सुनना अपराध है और उसके पाप के प्रति बोलना द्रोह है। *यदि पुतला ही जलाना है तो उस इन्द्रास*-नासीन देवराज का जलाया जाए ताकि भारत में दिन-प्रति-दिन बढ़ते नारी के प्रति अत्याचार जल सकें, भस्म हो सकें। हे त्रिलोचन, यदि तुलसी इस विषय मे थोड़ा भी लिख जाते तो भारत का बड़ा कल्याण होता। किन्तु वह मर्यादा पुरुषोत्तम के भक्त थे। *उनकी लेखनी पूज्य के प्रति सीमा* का उल्लंघन नहीं कर सकती थी। अतः महर्षि वाल्मीकि की साक्षी सुनिए—उन्होंने गौतम के मुख का श्राप सुना था जो इन्द्र को 'विफल' (अण्ड कोष रहित) कर गया था।

मम रूप समास्थाय कृतवानसि दुर्मते।
अकर्तव्यमिदं यस्माद् विफलस्त्वं भविष्यसि ॥

हे चन्द्रचूड़, मुझ पर न्याय कीजिये, पाहि माम्, पाहि माम्।

शंकर : *हम प्रसन्न हुए वत्स, हम तुम्हे वरदान भी देंगे और तुम्हारे प्रति अकारण* द्वेष रखने वालों को दण्ड भी देंगे।

रावण : (शंकर के चरण पकड़कर) नही मेरे आराध्य, उन्हें दण्ड नही सुबुद्धि प्रदान कीजिए क्योंकि वे तो मुझे मरने ही नही दे रहे हैं। जिस अभिमान, आत्म-*श्लाघा, दम्भ, दुराचार और परस्त्री-हरण आदि दोषों का नाम राक्षस रावण* है उसे तो वे लोग स्वयं अपने भीतर छिपाये विचरते हैं। मेरी पीड़ा यही तो है कि राम के द्वारा अन्त कर देने पर भी राम के भक्त मुझ रावण को मरने नही दे रहे हैं। मेरी मुक्ति नही हो पा रही है प्रभो। किसी व्यक्ति *का मात्र पुतला जलाने से वह व्यक्ति कभी नही मरता। ये लोग इतनी-सी* बात भी नही समझते। हाँ...अभी आपने वरदान की बात कही। प्रभो ! ...बस मेरे बहाने इन्हे सुबुद्धि दीजिए कि ये प्रतिवर्ष जितना धन मेरा पुतला बनाकर जलाने मे नष्ट करते हैं उससे जहाँ आवश्यक हो चिकित्सा-

लय, विद्यालय, अनाथालय, औषधालय, गौशाला, कुएँ, तालाब, सड़कें आदि बनवा दिये जाएं। इस प्रकार अभाव कम होंगे तो राम-राज्य पास आता प्रतीत होगा। सैन्य बल बढ़ाया जाए ताकि आतंक, अत्याचार, अपहरण आदि समूल नष्ट हो जाएं। बस, रावण मर जायगा।

शंकर : तथास्तु—लेकिन मेरे राम और राम के भक्त रावण का जो अपमान किया गया और किया जा रहा है उसका दण्ड-विधान यह है कि जब तक तुम्हारी कल्पना का राम राज्य इनकी समझ में नहीं आए तुम अमर रहोगे। जिन अवगुणों के कारण तुम्हारा अपमान होता है वे अवगुण जहाँ जिस तन-मन में होंगे वहीं दशानन का निवास होगा। तुम भी कामदेव की भाँति अनंग होकर असंख्यानन बने विचरण करोगे। तुम्हारा कल्याण हो।

(अन्तर्धान हो जाते हैं)

(रावण नतमस्तक हाथ जोड़कर प्रणाम करता है)

(पर्दा गिरता है)

○ ○

पण्डित जी

□ प्रेमपाल शर्मा

सामने बिछा मखमली लॉन, चमेली और जूही की बेल पर चपल शिशु की भाँति टुकुर, टुकुर झाकते सफेद फूल, आसमान पर रंगोली रचते बादल, तालाब के ऊपर बरसात की बून्दो से बने सुरमई कैनवास पर उभरे धुंधलाए रूपाकार, गड़गड़ाहट की आवाज के साथ सब कुछ गायब हो जाता है। स्मृति की बुलेट ट्रेन सर्र से उन्हे चालीस साल पहले खींच ले जाकर खड़ा कर देती है।

सामने एक गाँव, वाश-पद्धति से बने लेण्डस्केप की तरह उभरता है। शिवमन्दिर का शिखर, सैयद का थान, रतवा नदी, कीचड़ मे लोटती भैंसे, चुहल करती लड़कियाँ, अमराई, तालाब, करोंदे की झाड़ियाँ, धान के खेत, कुरलाते सारसो के बीच एक गाँव, किनारे पर घर, द्वार पर नीम का वृक्ष, घर ऊँचाई पर।

रात के बारह बजे हैं। पण्डित जी के घर लौटने का यही समय है। वे पूरे गाँव का दुःख-दर्द सुनकर, विचार-विमर्श कर लौटते हुए बड़बड़ा रहे हैं। क्या हो रहा है इस गाँव को? क्यों लड़ते हो तुम? कुछ नहीं पड़ा है इसमें। आधी धोती पहने, आधी कन्धे पर डाले, जिसके नीचे श्वेत जनेऊ, माथे पर लगा त्रिपुण्ड कुछ पुँछ गया है। गौरवर्ण, उन्नत ललाट, बड़ी-बड़ी आँखें। अभी वे आवाज लगाएँगे—मियाँ जी, अजी खाँ साब!, दरवाजा खोलो। वे अपने सबसे छोटे पुत्र को खाँ साब के नाम से पुकारते है। चौपाल से मूंज की खाट निकाल, गोरी गाय के पास डाल, तारों को निहारते पण्डित सो जाएँगे। चार बजे बाल्टी खड़केगी, कीर्तन और रामचरितमानस के पाठ के साथ पण्डितजी व उनके परिवार का दिन प्रारम्भ होगा। पण्डितजी पंचायत का काम करेंगे, पौरोहित्य ग्रामों मे भ्रमण करेंगे। बच्चे विद्यालय चले जाएँगे। घर मे रह जाएगी उनकी पतोहू। पण्डितजी ग्राम पंचायत के प्रधान भी है।

त्याग और सादगी की प्रतीक गाँधी टोपी, खद्दर का कुर्ता, घुटनों तक धोती, पैर मे चमरौधा, हाथ में लाठी, मझोला कद, अण्डाकार चेहरा, कसरती शरीर, महर्षि दयानन्द सरस्वती से कुछ-कुछ साम्य, प्रभावशाली आवाज के स्वामी पण्डित रामस्वरूप यद्यपि तीसरी पास ही है फिर भी स्वाध्याय के बल पर ज्योतिष, पौरोहित्य, दर्शन, काव्य का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ एक अच्छे पण्डित या कवि ही नहीं अपितु सच्चे देशभक्त कर्मठ समाज सेवी के रूप मे भी लोगो के हृदय पर शासन ही नही कर रहे वरन हृदय परिवर्तन करने का प्रयास भी कर रहे हैं।

चौपाल के बाहर खाट पर बैठे ठाकुर लोचन सिंह हुक्का गुड़गुड़ाते, गन्ने के फैले खेतो के पार देखते कहते हैं।

अँग्रेजो के विरुद्ध किसानो ने 'लगान मत दो' आन्दोलन छेड़ा तो पण्डित इस इलाके के अगुआ बने। 250 बीघे जमीन किसे कहते हैं ? लल्लू पण्डितजी ने देश की आजादी की लड़ायी मे 250 बीघे जमीन को कुर्बानी दी।

सभा हो रही है। पण्डितजी शेर की तरह दहाड़ती आवाज मे लोगो को ललकार रहे है। अँग्रेजी राज की पुलिस खड़ी देख रही है। क्या मजाल जो पण्डित को गिरफ्तार कर ले।

—'ये सात समन्दर पार से आये लाल मुँह वाले लालची बन्दर क्या माँगते हैं हम से ? लगान। क्यों माँगते हैं ? लगान। जमीन हमारी, खेत हमारे, मेहनत हमारी, देश हमारा, फिर यहाँ ये विदेशी क्यों ? ये हमारे यहाँ आये, हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाये, भैया ! व्यापार करने दो, हमारे बाल बच्चों पर दया करो। हमारी बिल्ली और हमी से म्याऊँ। इन्होंने फूट का लाभ उठाया। अब भारत जाग गया है। जागा है अब हिन्दुस्तान; भारत का मजदूर किसान, हम लगान नहीं देंगे, नही देंगे।

मारेंगे, मरेंगे, नही डरेंगे, नही डरेंगे। हमारा हक—स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता। समवेत स्वरों से गूँजता आकाश—स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता।

पण्डित को 250 बीघे जमीन से बेदखल कर दिया। छः महीने का वारण्ट निकला। पण्डितजी बनजारों के डेरे में बनजारे बने अँग्रेजी पुलिस को अँगूठा दिखाते रहे। तुम्हारे घर के दो दरवाजों की तरह पण्डित के दिल के भी दो खाने थे। एक परिवार का खाना, एक देश का बड़ा, परिवार का छोटा खाना, पद की लालसा से बड़ी सेवा की ललक। देश की एकता की ललक साम्प्रदायिक सद्भाव की भावना।

गांव के पास सिकलीगरों का डेरा लगा है। गांव के लोग चोरी छिपे, हथियार बनवा रहे हैं। बल्लम, भाले, बर्छी, फरशे। पण्डितजी को पता लगता है। वे मना करते हैं। चौपाल पर मीटिंग करते हैं।

—क्या जरूरत पड़ गयी हथियार बनवाने की, बोलो ?

—पण्डित के सबसे बड़े पुत्र क्षेत्रपाल स्वतन्त्रता आन्दोलन मे बनारस मे जेल

काट चुके हैं। बोले—'गुण्डों के आक्रमण से बचने के लिए हथियार जरूरी हैं।

—ये अविश्वास क्यों? क्या मुसलमान हमारे भाई नहीं?

—मुसलमान हमारे भाई हैं। परन्तु गुण्डे न हिन्दू होते हैं न मुसलमान, वे सिर्फ गुण्डे होते हैं।

—तो यह बोलिये कि गुण्डों और आततायियों से माँ बहनों की इज्जत व अपनी आत्मरक्षा के लिए हथियार बनवाए जा रहे हैं। मुसलमानों का नाम क्यों? क्या खैराती और बुन्दू तुम्हारे मित्र नहीं?

—मैं अपनी इस भूल के लिए क्षमा चाहता हूँ। कह, क्षत्रपाल ने सिर झुका दिया था। छतों पर पत्थरों और ईंटों के ढेर जमा किये जा रहे थे। औरतों की कमर में हर समय चाकू और हँसिए खुंसे रहते। पण्डितजी ने सभी मुसलमान परिवारों की सुरक्षा के लिए विश्वस्त व्यक्ति तैनात कर दिये थे। बाहरी व्यक्तियों के गाँव मे प्रवेश के लिए नाकेबन्दी कर दी थी। आज भी वह साम्प्रदायिक सद्भाव कायम है।

अचानक वे कुर्सी पर बैठे-बैठे रोमाञ्चित हो उठे। प्रथम स्वतन्त्रता दिवस जिस समय उनकी उम्र मात्र छः साल थी आज भी अपनी सम्पूर्ण भव्यता के साथ स्मृति पटल पर अंकित है।

चौपाल मे रखी मेज के चारों पायों से खपच्चियाँ बाँधकर तिरंगे पतंगी कागज से मण्डप बनाया जा रहा है। अन्दर मेज पर रेशमी कपड़ा बिछाया जाकर उस पर फोटो सजाये जा रहे हैं। वन्दनवार, फूलों की झालरें, उस समय वे 'मिस्टर गौड़'; अपनी बाल सुलभ जिज्ञासा को रोक नहीं पाकर अपनी बहन से पूछ बैठे।

—बहना! जि का है रह्योऐ।

—तू नाइ जानतु जि देशु आजादु है रह्योऐ

—जि आजादु का होतुऐ?

—मोइ का पतौ भैया कैंरए कै देशु आजादु भयौऐ

—जा मड़इया में काऐ

—उसने उत्तर न देकर पास आते भैया क्षेत्रपाल से पूछा—भैया जा में काऐं। उस समय मिस्टर गौड़ को बिठाकर, बताया। देखि, जितौएं महात्मा गांधी, जि नेहरू, जि नेता जी सुभाषचन्द्र बोस, जि बालगंगाधर तिलक। मिस्टर गौड़ ने छः वर्ष की अल्पायु में नेताओं का परिचय पा लिया था।

मिस्टर गौड़ की आँखें तरल हो जाती हैं।

पन्द्रह अगस्त 1947

सिर पर रखा मण्डप/हर घर के बाहर मण्डप उतरता है। लोग नेताओं के

दर्शन कर हाथ जोड़ते हैं। मिस्टर गौड़ की माताजी घण्टा घड़ियाल के साथ आरती उतारती हैं। लोग शहीदों के चित्रों के चरण स्पर्श करते हैं। पीछे हैं गाँव के आबाल, वृद्ध, नर-नारी हाथों में तिरंगे झण्डे लिए। भैया क्षेत्रपाल और मंगलसेन गा रहे हैं—

यह पुण्य पताका फहरे
मुक्तवायु मण्डल में अपनी मानस लहरी लहरे।
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।
समवेत स्वर—यह मानस लहरी लहरे
यह पुण्य पताका फहरे
झण्डा ऊँचा रहे हमारा

भारत माता की जय। नेताओं की जय जयकार से ध्वनित होता वायुमण्डल। पीछे नारियों का समवेत स्वर। भाभी नेतृत्व कर रही हैं।

मेरे चरखे का टूटे न तार
चरखवा चालू रहे।
समवेत स्वर—चरखवा चालू रहे।

कितना भव्य, कितना जीवन्त, कितना जोश, कितनी उमंग। वह सब कहाँ गया? परसों ही तो पन्द्रह अगस्त मनाया था। एक औपचारिकता जिसे निभाना था। एक राजकीय आदेश जिसकी अनुपालना करनी थी। वह जनता वह जन कहाँ था? जिसके लिए लड़ाई लड़ी गयी। वह जीवन्तता कहाँ गयी? मिस्टर गौड़ का मन रोने रोने को हो आया था। 'पगले! उस समय एक विदेशी से देश को मुक्त कराने का उल्लास था। आज अपने-अपने स्वार्थों की कारा में कैद रहने का कुहासा है।' अन्दर से कोई बोलता है।

यादों के कुहासे से स्वयं को मुक्त करने मिस्टर गौड़ घास के लॉन में चक्कर काटने लगते हैं। आज रिमझिम बरसात में उन्हें अपना गाँव रह-रहकर याद आ रहा है। झूले, मल्हार, रस की फुहार, शीतल बयार, धरती की गन्ध, झरती सुगन्ध, बरगद की छाँव जैसा गाँव। यादों के सारस फिर उड़ने लगते हैं धान के लहराते खेतों पर। जब से स्वतन्त्रता दिवस मनाया है वे बहुत उदास हैं।

पण्डितजी को भी उन्होंने इसी तरह उदास देखा था। लेकिन यह बहुत बाद की बात है।

प्रान्त में 'विधायिका' के चुनावों की सरगर्मी है। 'पण्डितजी। हम सबका विचार है कि आप इस बार चुनाव में खड़े हों' पण्डित नेकीराम, नेत्रपाल और श्री निवास बोलते हैं।

—मैं क्यों? तुम क्यों नहीं। जवान हो, जोशीले हो। मैं तुम सबके साथ हूँ। मैं

ता
न
का
निर्माण, सड़क ठीक करवाना, कुंओं में लाल दवा का छिड़काव, बीमारों की सेवा, सुरक्षा टोलियाँ, विकास समिति, श्रम, सहयोग, एकता जीवन के मूलमन्त्र।

घर में साधु सन्तों का आगमन निरन्तर होता रहता। शंकाएँ और शास्त्रार्थ। गृहस्थ में रहते हुए भी वीतराग वी ई ई त र ऽऽऽ ग।

दिल के अन्दर कहीं कुछ टूटता है। छनाक् स्मृतियों की रील मस्तिष्क की पुली पर घूमती फ्लैश हो जाती है। मिस्टर गौड़ धम से कुर्सी पर बैठ जाते हैं। जैसे सब कुछ जम गया है। माँ, बहन, भाभी के करुण-क्रन्दन से रुदन करता आकाश। सहमे-सहमे रुदन करते लोग। रोता हुआ मंगलसेन फूस लेने दौड़ पड़ता है। आँगन में फूंस पर पड़े शादी-शुदा सत्ताईस वर्षीय युवा बेटे क्षेत्रपाल के शव को चूम पण्डित बोल उठे 'हरि इच्छा बलीयसी'। संस्कार की तैयारी करो। निर्विकार, शान्त, सौम्य चेहरे पर वही ओज, उदासी की एक रेखा तक नहीं। आठ वर्ष की उम्र में मृत्यु का प्रथम साक्षात्कार। मक्खनलालजी की शंका आज भी हृदय पर कील-काक्षरों की भाँति अंकित है। और अंकित है पण्डित राम स्वरूप जी का उत्तर, जो मिस्ट

ण्डतजी बोल पड़े— , क्यों उदास हो! जबकि मृत्यु अटल है। यह संसार तो एक नाटकघर है। हम सब अभिनय कर रहे हैं। पिता, पुत्र, भाई, बहिन, पति, पत्नी। अभिनय समाप्त फिर वही।

तो दुःख क्यों?

रण, हर वस्तु का निर्माण है।

लेकिन पहले तो क्षेत्रपाल गाँव में पाठशाला चलाता था वह तो गया। अब दूसरा अध्यापक बालकों की शिक्षा के लिए खोजना पड़ेगा। मेरा विचार है जब तक कंचन पाल की स्थाई नौकरी न लगे तो उसे रख लें। दस रुपये शिक्षा प्रसार कार्यालय से मिल जायेंगे। चालीस रुपये चालीस बालकों से। खाना हमारे यहाँ खाता रहेगा। उस समय मिस्टर गौड़ ने व्यावहारिक दर्शन के प्रथम पाठ के साथ-साथ समाज सेवा का महत्व समझा था। पण्डितजी जीवन भर पढ़े-लिखे बेरोजगार लड़के लाते रहे, विद्यालय चलाते रहे।

घर जाकर पुत्र से बातें कर, घरवाली से गप्पें मारकर मिस्टर गौड़ बिस्तर पर लेटे बादलों में आँख मिचौनी खेलते चाँद को देख रहे हैं। मस्तिष्क के घन-पटल के बीच स्मृतियों की लुका छिपी।

सावन के महीने में भी उनके अन्दर गाँव का फागुन उतर आता है। खड़ताव ढोलक, हारमोनियम पर शुद्ध पिंगल के नियमों में ढले भजन गाते मंगलसेन, लालाराम। हो सकता है मिस्टर गौड़ के अन्दर कवित्व के बीज वहीं से पड़े हों। 10 वर्ष की उम्र मे ही वे वार्णिक-मात्रिक गण, गतागत का ज्ञान पा चुके थे। पण्डितजी उन्हे मेहमानो के समक्ष कविता सुनाने के लिए प्रेरित करते। पण्डितजी होली, दिवाली हर त्योहार पूर्ण उल्लास से मनाते। उन्होने अपने पुत्रो को सम्पत्ति नहीं संस्कार दिये। जीते जी कोई भी मुकदमा कचहरी मे दर्ज नहीं होने दिया।

उनका जीवन पिता के दिये संस्कार, माँ के प्यार, गुरुजनों की शिक्षा, समाज और साहित्य के प्रभावों का प्रतिफलन है—वे सोचते है।

रक्त रंजित वोटों की राजनीति, क्षुद्र स्वार्थों के कारण गाँव मे फूट पड़ने लगी, नकबजनी के साथ-साथ पशु खुलने लगे, जोरू और जमीन के कारण झगड़े बढ़ने लगे। पंचायत का अनुदान पाने के लिए उनसे भी रिश्वत माँगी जाने लगी तो वे अन्दर तक हिल उठे।

'गौड़' ने पण्डितजी को रास्ते चलते बड़बड़ाते सुना था—'क्या इसीलिए लड़ाई लड़ी थी कि भाई-भाई का दुश्मन बन जाय? अरे यह तो नहीं सब मिलकर देश का विकास करें, सद्भाव और भाईचारा बढ़ायें, रिश्वत, भ्रष्टाचार, बेईमानी दुराचार—करो भाई करो, सत्ता की लाठी से तोड़ दो सबकी कमर, नोच लो देश की खाल, हमाम में सब नंगे हैं। रामस्वरूप तू मूर्ख है पगले! क्यों हवा में चाबुक फटकार रहा है। इस नक्कार खाने मे तेरी आवाज कौन सुनेगा! सन्नाटे को तोड़ती आवाज कौन सुनेगा! कौन सुनेगा!' कह वे बञ्जर भूमि मे खड़े किसी पेड़ की जड़ में बैठ रो पड़ते। फिर करुण स्वर मे गाते है 'चल उड़ जा रे पंछी कि अब ये देश हुआ बेगाना।' जो जवान बेटे की मौत पर नहीं रोया, वह अपने सपनों के देश पर रो रहा था।

लोग कहते पण्डित पगला गए है।

एक ठण्डी सुबह गीता पाठ करते-करते यह सपूत अपने प्रभु मे लीन हो गया।

उनका नाम स्वतन्त्रता सेनानियो में कहीं नहीं है। लेकिन लोगों के दिलो में उनकी याद आज भी जिन्दा है।

○ ○

सवा रुपये में भूत, भविष्य और वर्तमान

☐ श्याम मनोहर व्यास

त्रिकालदर्शिता की अनुभूतियाँ मानव को सदैव से उद्वेलित करती रही है। भूत-भविष्य व वर्तमान रहस्यों के घेरे में ही रहे हैं। यदि कोई तान्त्रिक या ज्योतिषी हमारा हाथ देख कर या अन्य क्रिया से हमारा भूत, भविष्य और वर्तमान टेप-रिकार्डर की तरह सुना दे तो हम निश्चित ही स्तम्भित हो उठेंगे। आखिर क्या रहस्य है इसके पीछे!

एक आप बीती घटना है। मई सन् 1987 में जयपुर गया था। एक दिन अकस्मात् ही घूमता मैं एक राजमार्ग से गुजर रहा था। गोविन्ददेवजी के मन्दिर से कुछ ही दूर पर, बिसातियों की कई छोटी-छोटी दुकानें लगी रहती हैं। इन्ही के बीच मुझे एक तान्त्रिक साधु दिखाई पड़ा। सिर से पैर तक लहराता, रंग उडा, मटमैला काला चादर, कण्ठ में लटकी बीसियो नीली-हरी-पीली-कत्थई मालाओ का जाल, सिर पर त्रिपुण्डमय तिलक, घने घुघराले बाल, दातो मे ठुकी जगमगाती सोने की कीलें, नेत्रों में एक चमक और हर पल बुदबुदाते होठ—जय शकर, जय भैरव, जय बजरंग आदि। पास ही एक काले पर्दे पर अंकित मुर्दे की खोपडी, उसके नीचे फैली एक हथेली का चित्र, काच लगे चौखटे मे लगी बीसियो अखबारी कतरनें जिनमे तान्त्रिक की प्रतिभा का उल्लेख था। इन सबसे प्रभावित मैं तांत्रिक के पास जा पहुँचा। मेरे नमस्कार करने पर वह मुस्कराया।

'आपकी फीस!' मैंने पूछा।

'केवल सवा रुपया।' उसने निर्विकार भाव से कहा। मैने इधर-उधर देखा, इस भय से कि कही कोई परिचित मेरी मूर्खता पर हँस न पड़े कि पढा-लिखा होकर फुटपाथ पर बैठने वाले साधु से अपना भविष्य जानना चाहता है।

मैंने सवा रुपया भेट चढाकर अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया।

उसने यान्त्रिक तत्परता से मेरी दोनो हथेलियों पर एक लेप लगाया, एक कोरे कागज पर दोनों हाथों की छाप ली और पर्दे के पीछे चला गया।

जब लौटा तो वह किसी टेप की तरह चालू हो गया।

टूटी-फूटी हिन्दी में उस तान्त्रिक ने मेरे शैशव से लेकर मेरे उस दिन तक के भूत- भविष्य-वर्तमान को प्याज के छिलकों की भाँति छील कर मेरे सामने रख दिया। यह देखकर मे अवाक् रह गया। नौकरी, बीमारी, पारिवारिक उलझनें सबके बारे में सही-सही बता दिया।

अन्त मे उसने कहा कि मैं एक सप्ताह तक बस मे यात्रा न करूँ। मैंने तान्त्रिक के आदेश का पालन किया। ट्रेन से ही उदयपुर गया। जिस दिन उदयपुर आया उसके एक दिन पहले जयपुर से उदयपुर आने वाली रात की बस काकरौली के पास दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी। आठ व्यक्ति घटना स्थल पर ही मर गए थे।

तान्त्रिक की चेतावनी ने ही उस दिन मेरी प्राण रक्षा की।

तान्त्रिक ने यह भी बताया—'बेटा शिक्षा विभाग में रहकर तुम साहित्य सेवा करोगे। कलम ही तुम्हारी मित्र बनेगी।'

तान्त्रिक की यह बात भी अक्षरशः सत्य है। विगत पच्चीस वर्षों से मे साहित्य-साधना मे जुटा हूँ। एक दर्जन से ऊपर पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

आज भी सोचता हूँ—सवा रुपये मे भूत, भविष्य और वर्तमान की जानकारी कितनी सस्ती मिली। सवा रुपये में तो आज आधा किलो दूध या एक समय का भोजन भी नही मिलता है। आज जहाँ तान्त्रिक व ज्योतिषी झूठी-सच्ची बातें बता कर लाखों रुपये लोगो से ऐंठ लेते रहे हैं, वहाँ इस सवा रुपये की क्या कीमत भला! तान्त्रिक से साक्षात्कार का वह चमत्कारिक अनुभव मेरे लिए सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

○ ○

लाल बन्धु

□ राधेश्याम सिंघल

यूँ तो ससार मे तरह-तरह के प्राणी मिलकर बिछुड़ जाते हैं परन्तु प्रत्येक को याद नहीं किया जाता। हाँ, यह भी सत्य है जो विलक्षण प्रतिभाएँ लेकर इस जगती तल पर आते है उन्हें पल-पल पर याद भी किया जाता है। लाल बन्धु उन्हीं प्रतिभावानों में हो तो कोई सन्देह नहीं। उनका बहुआयामी प्रभावी व्यक्तित्व कदापि भूलने लायक नहीं। लोगों की जबान पर हर समय चढ़े रहने वाले लाल बन्धु तो ख्याति प्राप्त विश्वसनीय फर्म की तरह मशहूर हैं। वे ऐसे होनहार दो व्यक्ति हैं, जो हर जगह नही मिल सकते।

लाल बन्धु हैं तो सामान्य अध्यापक ही, परन्तु अपनी बुद्धिमत्ता, प्रभावी व्यक्तित्व तथा स्वाभिमान के धनी होने के साथ भाईचारे मे अटूट आस्था से सबके लाल बन्धु बन गये हैं। कोई छोटा हो या बड़ा, उन्हें लाल बन्धु नाम से ही सम्बोधित करता है। बहुतों को उनके नाम का पता नही, जब भी उनके बारे में बातचीत होगी तब लाल बन्धु कहेगे। दूसरी मजेदार बात यह भी है कि यह दो का सम्मिलित सम्बोधन है परन्तु कही एक हो तो भी लाल बन्धु उच्चारण करेगा।

इसमे कही भी सन्देह नही कि वे लोकप्रिय हैं। दूसरी बात यह भी है कि वे दोनो लम्बे-लम्बे कद के सुडौल श्यामल गौर किशोरो की तरह बन-ठनकर चलते हैं तो लोग उन्हें देखकर राम-लक्ष्मण से तुलना करने लगते हैं। किसी दिन दुग्ध धवल वेश-भूषा धारण कर आए तो लोग हंस जैसी जोड़ी की उपमा चलते-चलते दे जाते हैं। यह सब उनके आकर्षक व्यक्तित्व की ही देन है।

सही रूप से देखा जाय तो एक ने इतिहास दूसरे ने संस्कृत से एम. ए. किया है तृतीय श्रेणी से। परन्तु वे दोनो राजनीति के तो बड़े गुरु माने जाते हैं। आये दिन जाने कहाँ से तरह-तरह के समाचार पकड़ के लाते हैं "अमुक थानेदार को भ्रष्टा-

चार के मामले में निलम्बित कर दिया। वो डाक्टर मस्ती मारता था भ्रष्टाचार निरोधक विभाग द्वारा रंगे हाथ पकड़ लिया गया। देख लो तहसीलदार को, गया। जिलाधीश ने ऐसी डांट पिलाई कि प्राण निकल गये। कहने का मतलब, ऐसा हौआ खड़ा करना कि लोग मान जाते हैं कि भैया लाल बन्धु कह रहे हैं सत्य भी हो सकता है।

इन्हीं समाचारों पर एक दिन प्रधानाचार्य महोदय ने कहा, "आप लोगों को पुलिस सेवा में होना था। शिक्षा मे ऐसे समाचारो का क्या असर पड़ता है। आपने इस विभाग मे आकर बड़ी भूल की।

लाल बन्धु दो होते हुए एक की तरह रहते। एक पर एक ग्यारह की कहावत चरितार्थ होती। दो तन एक प्राण की उपमा तो अक्सर सभी देते। इसी कारण जब भी कोई बात गुजरती, लाल ठीक दोनो एक हो जाते। सारा ससार एक ओर हो जाय वे दोनों टस से मस नही होते। धुन के पक्के, हाथ के सच्चे, कर्मठ लाल-बन्धु ने हलचल मचा दी। लोग भय खाते और कतराते।

पुराने ऐतिहासिक आल्हा-ऊदल की तरह भ्रष्टाचार विरोधी वीर लाल बन्धु ने अपने हाथ कई भ्रष्टाचार के गढ़ सर करके जीत का डंका बजाया। उस बार कोप-कार्यालय मे भारी अन्याय बढ़ रहा था। अध्यापकों के कोई भी बिल बिना लिये-दिये पास नही हो रहे थे। जो आता वही रोता—भ्रष्टाचार खाये जाता हैं सरेआम। कोई सुनता ही नही। कोप-कार्यालय को कोई देखता ही नहीं। सुनकर लाल-बन्धुओं को काला साँप-सा डस गया। आव देखा न ताव, अड़ गये जिलाधीश से। हजारों रुपये भ्रष्टाचार में अर्जित करने के प्रमाण प्रस्तुत कर दिये। जिलाधीश महोदय मान गये। तुरत-फुरत हवाई सर्वेक्षण की तरह जिलाधीश ने पूरे का पूरा स्टाफ रफू चक्कर कर दिया। लोगों को पता चला, प्रचार प्रसार हुआ, लाल-बन्धुओ ने यह भण्डाफोड़ कराया है। सबको राहत की सांस मिली।

एक बार जिला शिक्षा अधिकारी महोदय विद्यालय का सुपरविजन करने आये थे। सभी साथी अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग रोने लगे। तब लाल बन्धुओ ने सारे राग रग छोड़कर द्वितीय वेतन शृंखला मे पदोन्नति की बात उठायी। जिला शिक्षा अधिकारी खाली स्थानों का अभाव प्रदर्शन कर टाल गये सारे प्रश्न। लाल बन्धु भी विष-का-सा घुट पीकर चुप हो गये।

कुछ दिनों बाद द्वितीय वेतन शृंखला में रिक्तियाँ भरने अन्तर-जिला स्थानान्तरण तथा राज्यादेश धड़ाधड़ होने लगे। लाल बन्धु चौक पड़े कि इस जिले में अनावश्यक बाढ़ की तरह स्थानान्तरणों से यहाँ प्रमोशन होगा ही नहीं। वह चश्मदीद देख भी रहे थे। लोग बड़ी भागदौड़, गठजोड़ नेतागीरी की शरण ले देकर अपना फन्दा फिट करने की जुगाड़ बनाने दिन-रात एक कर रहे थे। लाल बन्धुओं का तब पता चला जब न्यायपालिका ने द्वितीय वेतन शृंखला की समस्त रिक्तियो पर स्टे आदेश देकर ताला डाल दिया। जिला शिक्षा अधिकारी दंग हुआ। साथ ही

पेसनातरण की धमकी दे डाली। प्रधानाचार्य को भी फुसलाकर दवाने की कोशिश की। वे ठहरे लाल बन्धु ! न्यायपालिका से जोंक की तरह चिपट गये। और तब छूटे जब प्रमोशन उसी स्थान पर हो गया। बधाई देनेवाले लोगों से कहते :

अधिकार खोकर बैठ रहना,
यह महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को
भी दण्ड देना धर्म है।

लाल बन्धु घर-बाहर सर्वत्र एक जैसा आचरण करते। दो मतवाले सिंहों की तरह बलिष्ठ व्यक्तित्व में झूमते हुए जब चलते तब समाज के कितने ही दादा गुण्डे उनके कदम चूमते। कोई सामने पड़ता ही नही था। परीक्षा के अन्तिम चरण में एक सीधे से गणित के अध्यापक का कुछ असामाजिक तत्वों ने अपमान कर दिया। पूरा शिक्षक वर्ग कतराने लगा मदद करने से। कारण यह कि अपमानकर्ता प्रतिष्ठित घर से सम्बन्धित था। वह किसी भी कर्मचारी का बिस्तर गोल करा सकता था। *यहाँ कौन गवाही देकर कोढ में खाज जैसा रोग कष्ठ लगाये। लाल-बन्धु ही फौलादी* सीना खोलकर सामने आ गये। बेधड़क हो घोषणा करने लगे—"शिक्षक का स्वाभिमान मर गया तो उसमे क्या शेष रहेगा? हमें संघर्ष करना ही होगा। यदि कोई लाट साहब आतंकवाद के बल पर शिक्षकीय गौरव को ठेस पहुँचाता है तो द्रोणाचार्य और चाणक्य भी हैं जो उसको तहस-नहस करने में नहीं चूकेंगे।" कुछ अध्यापक तो घबराये, कुछ की मुट्ठी मे जान आयी परन्तु वह तो हँसते कमल की तरह उभरे और दो सेकिण्ड में वही असामाजिक तत्व धराशायी हो गया और अपमानित होकर गुरुजी की चरण रज सिर पर रखने लगा। घृणा अपमान का दृश्य बदला और क्षमा दया का वातावरण बन गया। लाल बन्धु की सराहना होने लगी।

कहने का मतलब, नाटकीय दृश्यों की तरह लाल बन्धुओं के आदर्श क्रियाकलाप होते रहते। समाज मे बढते स्वार्थ पर कटाक्ष करते। जिस समाज में भाई चारा, सत्य और अहिंसा का गला घोटनेवाले निर्मम होकर मनमानी करने लगते है उस समाज का पतन होता है। इनका खरा स्वभाव बड़ा सुहावना लगता।

एक वर्माजी का रिटायरमेण्ट समारोह होना था परन्तु उनके कार्य व्यवहार से सभी बड़े मायूस थे। कोई भी उनका सम्मान कर विदा करना नहीं चाहता था। स्वय प्रधानाचार्य भी उनके काले कारनामो का चित्रण कर मुँह फेरना चाहते थे। वर्माजी की जन्मजात आदत खाँ-म-खाँ की आलोचना करके बुरा बनना था। कोई विदाई पार्टी की तो बात दूर, साथ एक गिलास पानी पीना भी अच्छा नही मानते। वर्माजी लाल बन्धुओं के गुरु रह चुके थे इसलिए लाल बन्धु गुरु-निन्दा सहन करने में असमर्थ थे। *वातावरण बदलने हेतु भाग-दौड़ शुरू हुई और एक बहुत बड़े*

जुलूस के आयोजन की तैयारी हुई। सौ दो सौ रुपया गाँठ से फूंककर अभिनन्दन पत्र प्रकाशित करवाये।

वर्माजी बड़े प्रसन्न दिखायी पड़े। पूरे समुदाय के समक्ष उनकी अवगुण गाथा भूलकर गुणगाथा सुनाई पड़ी। लोग तालियाँ बजा-बजाकर हँसते और कहते—धन्य हैं लाल बन्धु, ऐसे बुरवार का भी स्वागत करा रहे हो। वर्माजी भी मान गये जो प्रशसात्मक शब्द कभी नही कहते आज लाल बन्धुओ को धन्यवाद दे गये।

अभिनन्दन पत्र में वर्णित प्रशंसा पर स्टाफ मे चर्चा हुई, लालबन्धु का करिश्मा कहकर सन्तोष की श्वांस ली। जनसख्या गणना के अवसर पर स्थानीय उपखण्डाधिकारी ने मीटिंग की। वहाँ लालबन्धुओ के पाँवो मे एक गरीब आ लौटा, रोता फिफाता बोला, "जैसे तैसे प्रभु ने एक बच्चे का मुँह दिखाया, वह भी मिट्टी के तेल की कमी के कारण अन्धेरे मे दो दिन से पड़ा है। लाल बन्धु मीटिंग को छोड़ उस गरीब के साथ जाकर उपखण्डाधिकारी से कहने लगे। यहाँ ब्लेक मार्केट का बोलबाला है। एक लीटर भी तेल नही मिलता। देखो गरीब का बच्चा दो दिन से अंधेरे मे पाँव पीट रहा है।

खण्डाधिकारी ने सारे डीलर टटोल डाले। तेल कहाँ रखा था। वहाँ तो ब्लेक था। आया नही कि गया नही। सारे डीलर्स की सिक्यूरिटी जब्त के आदेश हो गये और उस गरीब को जीप में बिठाकर दूसरी जगह से तेल दिला दिया।

लाल बन्धु पत्र-पत्रिकाओं के लिए कविता कहानी लिखते और वह प्रकाशित भी होती। जब कभी कविगोष्ठी का आयोजन होता तब चार पंक्तियाँ बड़े सरल स्वभाव से पढ़ते :

चाह नही हो भामिन को पद पायके जग मे नाम कमाऊँ।
चाह नही अधिकारिन को पद पायके मैं अधिकार जमाऊँ॥
चाह नही धनवानजु होय के मैं तब बैठि के जीप घुमाऊँ।
चाह यही बस जीवन की तन देश की खातिर भेंट चढ़ाऊँ॥

यह अक्सर कहते, देश मे स्वार्थी तत्वो का बोलबाला है। सन् 1947 से पूर्व क्रान्तिकारी और राष्ट्र भक्त पैदा होते थे। आजकल तो भारतमाता ने चमचा और देशद्रोही पैदा करना शुरू कर दिया है। इसलिये भाई और बहिनो, सावधान, देश के लिए कमर कसकर सामने आओ, वरना राष्ट्रीयता का अभाव होकर अन्धेरा होने वाला है।

आजकल लाल बन्धु कम दिखाई पड़ते हैं। सारी चहल-पहल शुन्य-सी हो गयी है। सुना है कि दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण अस्पताल मे भर्ती हैं। जो सुनता है वही नंगे पाँव मिलने भागता है।

• •

गरीबी गाँव की

□ निशान्त

...रीबी कम हो गयी ...क-एक बैठकें पक्की ... है। मामूली जमीन वालों के पास ट्रैक्टर हो गये है। पहले से ज्यादा गल्ला पैदा होने लगा है। काम-धन्धा बढ़ा है और खेतीहर मजदूरों को भी अधिक काम मिलने लगा है। गरीब से गरीब गाँव वाले के पास भी एक टेरीकाट का कुर्ता जरूर है। (पाँच-दस को छोड़कर) सब साबुन की टिकिया से नहाते है। साबुन भले ही कपड़े धोने का ही क्यों न हो? कई मिडल पास और मैट्रिक पास हो गये हैं। पाँच-दस बी. ए. और एम. ए. भी, फिर भी गाँव के आदमी के पास पैसा और फुर्सत नहीं है। आज गाँव में छोटा या मध्य दर्जे का कोई किसान ऐसा नही, जिस पर सरकारी और गैर-सरकारी ऋण न हो।

आज से बीस-पच्चीस साल पहले गाँव का आदमी जरूर पैसे और फुर्सतवाला था। जब वह बैलों से खेत जोतता था, कच्ची नालियों से सिंचाई किया करता था, तब वह ठसक से बाजार जाता था और खाती की खतोड़ में बैठकर कहकहे भी लगाता था। आगे गाँव मे दूध नहीं बेचा जाता था। दूध-पूत एक समान गिने जाते थे। लेकिन अब दूध बेचने से भी पूरा नही पड़ता। लोग आर्थिक रूप से ही गरीब नहीं हुए हैं। नैतिक रूप से भी गरीब हो गये हैं। गाँव में इक्का-दुक्का चोर तो सदा ही हुआ करते थे। मैं बहुत छोटा था तब पिताजी के साथ खलियानों में रखवाली के लिए सोया करता था। गाँव में एक-दो चोरी छुपे पानी भी अपने खेत में तोड़ लेते थे। लेकिन अब तो अच्छे-अच्छे लोगों की नीयत डोल चुकी है।

गाँव की साँझी पक्की नालियों के नाकों में लगी, सरकारी लोहे की चादरें सभी

लोग अपने-अपने घर ले आये है। कच्ची नालियाँ थी तो नाके मिट्टी से आसानी से पूर दिये जाते थे। लेकिन अब पक्की नालियों के नाके बाँधना टेढ़ी-खीर हो गया है। पक्की नाली की वजह से फावड़े से लेने के लिए आस-पास कहीं मिट्टी भी तो नहीं मिलती। फिर पक्की नाली में पानी का बहाव भी तो तेज होता है।

चादरें चुराने का भी लोगों को दुहरा लाभ हुआ। एक तो दस-पन्द्रह सेर लोहा घर आया। दूसरा नाका कच्चा होने से पानी टूटने लगा और हराम के पानी से खेत की क्यारी, दो क्यारी सीलने लगीं।

पिछले दिनों गाँव के एक बुड्ढे किसान ने रास्ते में सूनी खड़ी एक साइकिल को नरमे की ऊँची-ऊँची फसल में छुपा दिया, साइकिल का मालिक आया और पूछ-ताछ की तो उसी किसान को पकड़ लिया कि बता साइकिल कहाँ है? अभी यहाँ और कोई तो आया भी नहीं? दो-चार लोग और भी इकट्ठे हो गये। कुछ कहा-सुनी, कुछ गर्मा-गर्मी हुई तब उस किसान ने खिसियाते हुए साइकिल निकाल कर दी-- मैं तो यूँ ही मजाक कर रहा था।

उसके कथन में कितना सत्य था। सब जानते हैं, साईकिल का मालिक अपनी जिद्द छोड़ देता और हाथ झड़काकर घर आ जाता तो साईकिल से हाथ धो बैठता। उक्त किसान ने गाँव में कभी कोई चोरी नहीं की, अलबत्ता उसके लड़के जरूर सब्जी इत्यादि की चोरी के लिए गाँव में बदनाम हैं। लेकिन अब तो वह भी···! क्या जमाना आया है। लोग अपने धोलों में धूड़ गिराने के लिए मजबूर हो गये हैं।

गाँव की गरीबी का एक और उदाहरण :

पिछले दिनों गाँव में एक सीमान्त किसान के मैट्रिक पास लड़के तुलसी को जब मैंने एम. एल. ए. को एम. पी. और एम. पी. को एम. एल-ए. कहते सुना तो मुझे कोई हैरानी नहीं हुई। मैं जानता था, तुलसी मैट्रिक पास तो जरूर है लेकिन इस बेचारे को पढ़े-लिखे को दुहराने के लिए फुर्सत कहाँ मिली?

मैं जानता था उसके बाप ने उसे मैट्रिक पास करने से पहले ही ब्याह दिया था। घर में तंगी तो थी ही। ब्याह कर देने से और बढ गयी। वह भाई-बहनों में भी सबसे बड़ा था। इसलिए चिन्ता-फिकर उसे शुरू से ही थी। बाप जवानी के दिनों में शराबी रहा और बुढापे में आकर बीमार रहने लगा। उसे अपनी गृहस्थी के भार के साथ-साथ अपने बाप की गृहस्थी का भार भी उठाना पड़ा।

घर में, कहीं आने-जाने और ठगाने को पैसा नहीं था। इसलिए मैट्रिक करने पर भी उसे कहीं नौकरी नहीं मिली। अपनी दो-बीघा भूमि से क्या होता? इस-लिये गाँव के बड़े किसानों के यहाँ दिहाड़ी-मजदूरी करने लगा। दिहाड़ी करते-करते इन्हीं बड़े किसानों की पाँच-सात बीघा भूमि चौथे हिस्से और बेगार पर 'बाहने' लगा।

घर वाली भूमि का काम खत्म होता तो बेगार का काम होता और बेगार से

छुट्टी मिलती तो अपने खेत-क्यार का काम तैयार मिलता। कहने का अर्थ यह है कि खेती-बाड़ी के धन्धों और घर-गृहस्थी की चिन्ताओं ने उसे सब कुछ भुला दिया। सब कुछ जानते हुए भी मैंने उसे टोका—तुलसी तुम तो पढ़े हो, फिर भी एम. एल ए. और एम पी. का फर्क नहीं समझते?

तभी पास खड़े उसके भाई ने कहा—

भूल गयी सब राग रंग
भूल गयी जखड़ी (लोक-गीत)
याद रहीं तीन चीजें
नून, मिर्च, लकड़ी

ऊपर का यह कवित्त गाँवों में गरीब घर की औरतों के लिए सटीक बैठता रहा है लेकिन अब तो यह तुलसी पर भी पूरा 'ढुक' रहा था।

एक यह तुलसीराम ही क्यों? न जाने कितने ही तुलसीराम होंगे जो पढ़-लिखकर भी अनपढ़ों से गये-बीते हैं। हमारी सरकार अधिक से अधिक लोगों को पढ़ाने के लिए चिन्तित है। वह प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, रेडियो, टी. वी. इत्यादि के माध्यम से ज्ञान का विस्फोट-कर रही है, लेकिन गाँव का आदमी इस विस्फोट के बावजूद भी कुछ नहीं जानता। क्या लोगों को शोषण मुक्त किये बिना, थोड़ी फुर्सत दिये बिना, शिक्षित करना भी बेमानी नहीं है?

मण्टू

□ गोपालप्रसाद मुद्गल

जाड़े के दिन हैं। लोग बंद कमरों में सुख की नींद सो रहे हैं। कमरे भी एयरकंडीशंड। कहीं हीटर लगे हैं। रजाई ओढ़ रखी हैं बगुला से भी उजली। अलग-अलग पलँग हैं। अलग-अलग बिछौने। जाड़ा घुसे तो कैसे घुसे? ऐसे भर जाड़े में मेरे घर के सामने मण्टू घोसी चौड़े में सो रहा है। चार बाँसों पर तीन टूटी टीन डाल रखी है। टूटी खाट है। तीन पाये तो हैं चौथा है ही नहीं। चौथे पाये के स्थान पर चार-पाँच ईंट लगा रखी है। खाट पर टाट बिछा रखा है। ओढ़ने को केवल दो चादर हैं। उनके ऊपर एक टाट डाल रखा है। मण्टू गरीबी के बोझ से इतना दबा हुआ है कि खाट भी बोझिल हो गयी है।

चौड़े में मण्टू है और चौड़े में ही है उसकी भैंस। भैंसों पर उसने टाट डाल रखे हैं। समाजवाद साकार दिखायी पड़ रहा है।

टूटी खाट पर ही उसका बेटा नसरू सो रहा है। दूसरी खाट है ही नहीं। ओढ़ने-बिछाने को कुछ है ही नहीं। दोनों बाप-बेटा एक ही खाट पर गड्ड-मड्ड हो रहे हैं। खटिया भी इतनी सकरी कि करवट बदलना भी दूभर। फिर करवट बदलने की किसको फुरसत है। दिन-भर की मेहनत से थककर चकनाचूर जो हैं। बिना थपकियों के नींद दबोच लेती है। सच है, नींद न देखे टूटी खाट।

मण्टू अपने घर से दूर नयी कॉलोनी में रह रहा है। अपनी भैंसों के लिए किराये पर एक खाली प्लाट ले रखा है। चारों ओर विलायती बबूल लगे हैं। इनसे भैंसों की रखवाली हो रही है।

मैं जब सवेरे दूध लेने जाता हूँ तो देखकर द्रवित हो उठता हूँ। उसको दो चद्दरों में सोता देखकर हिल जाता हूँ। चद्दरों पर पड़े टाट को कमबख्त कुतिया के पिल्ले खींचकर नीचे डाल देते हैं। उसमें वे लिपटकर उसकी खाट के नीचे सो रहे

हैं। इच्छा नहीं करती कि मण्टू को जगाऊँ, किन्तु बैड टी के लिए दूध लेने वाले और भी तो आ धमकते हैं। कोई-न-कोई उसे जगा ही देता है।

मुझसे नहीं रहा जाता। मण्टू से पूछ बैठता हूँ, "भले आदमी ! तुझे इतना भी ध्यान नहीं—पिल्ले तेरे टाट को खींचकर ले गये। वे तेरी खाट के नीचे टाट पर सो रहे हैं।"

मण्टू के उत्तर को सुनकर मैं और भी पिघल जाता हूँ। वह आँखों को मलते हुए टूटे-फूटे शब्दों में सहज रूप से कह उठता है, "ये पिल्ला भी तो राम के जीव हैं। मेरा बेटा नसरू तो खाट पर सो रहा है। ये तो विचारे खाट के नीचे पड़े हैं।"

मेरे प्रश्न का हल मिल जाता है। मण्टू ऊपरवालों को नहीं नीचे वालों को देखकर जिन्दा है।

[illegible]

होता, वह तो सच्ची आत्मा की सही पुकार है। प्रार्थना अन्धविश्वास नही बल्कि वास्तविक आत्मा की सच्चाई है। अर्थ से रहित हमारा स्तोत्र-पाठ प्रार्थना नही है

...वक

...र्थना

का आमन्त्रण निश्चय ही हमारी आत्मा की व्याकुलता का द्योतक है। यह पश्चात्ताप का भी एक चिह्न माना जाता है। यह प्रार्थना हमारी अधिक अच्छे और अधिक शुद्ध होने की आतुरता को सूचित करती है। अतः हमें अपना कोई भी काम बिना प्रार्थना किये नही करना चाहिए। क्योंकि मनुष्य का सबसे बड़ा सहारा ही प्रार्थना है। प्रार्थना किसी भी नाम से की जा सकती है। क्योंकि उसका वाहन तो मात्र भक्तिपूर्ण हृदय ही है। ईश्वर के असंख्य नाम हैं, हमें जो भी नाम रुचिकर लगे उसी की अर्चना या प्रार्थना कर सकते हैं। प्रार्थना वाणी से नही हृदय से होती है। हमारे सारे प्रयत्न प्रार्थना के बिना अधूरे ही रह जाते हैं, अतः जीवन मे प्रयत्न के साथ-साथ प्रार्थना भी अनिवार्य ही है।

यह प्रार्थना मात्र नम्रता की पुकार ही नही है वह आत्मावलोकन एवं आत्म-शुद्धि का आधार है। अत. प्रत्येक धर्म का सार प्रार्थना ही है। इसे धर्म और मानव-जीवन का मार्मिक अंग माना जाता है। इसके लिए कोई कठोर या जटिल नियम नहीं बनाया जा सकता है। न ही निश्चित समय नियत किया जा सकता है। यह तो अपने-अपने स्वभाव पर निर्भर है तभी तो विद्वानों ने प्रार्थना को प्रातःकाल की कुंजी तथा सायंकाल की सौकल कहा है। गांधीजी ने कहा था—"मुझे जो भी शान्ति या सफलता मिली है, वह सब प्रार्थना के द्वारा ही। क्योंकि इसमें ईश्वर के साथ सहकार हो जाता है।"

मनुष्य सदैव ही प्रार्थना के द्वारा प्रभु की कृपा और सहायता से अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर सकते है। हमारे विचार यदि भ्रमित हों, हमारा पथ यदि भ्रष्ट हो, तो इन दोनो की शुद्धता के लिए, इनकी पवित्रता के लिए तथा इनकी सात्त्विकता के लिए हार्दिक प्रार्थना एक संजीवनी बूटी है। अत. अब तक के किये

...र्थना

...और

...भी

...रथ

...को

मे यह संस्कार शैशव अवस्था से ही डाल देना चाहिए। विद्यालय-प्रार्थना को सही सच्चा तथा प्रभावी रूप देकर हम बालक के साथ न्याय कर सकेंगे।

आइए! आज से ही हम सच्चे भाव और सच्चे मन मे प्रार्थना कर जन-जन के कल्याण की कामना करें और मन की मलिनता दूर कर सर्वेश्वर से सबके उदय की भावना करें। प्रभु सबको ही सद्बुद्धि प्रदान कर सत्पथ पर अग्रसर करे, यही मंगल कामना है।

○○

प्रार्थना

□ भगवंतराव गाजरे

प्रार्थना जीवन की मूलभूत आवश्यकता तथा आध्यात्मिक जीवन का प्राण माना जाता है। प्रत्येक धर्म का प्राण और सार भी प्रार्थना को ही बताया गया है। प्रार्थना से आत्मशुद्धि और आत्मनिरीक्षण होता है, अतः मानसिक और आत्मिक शान्ति के लिए प्रार्थना को अत्यावश्यक ही नही अनिवार्य माना गया है। इसी प्रार्थना मे असीम शक्ति निहित है। इसे हम अपने इष्ट के समक्ष नम्रता की पुकार कहते हैं। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह प्रातःकाल उठने के बाद अपना दिन-भर का कार्य सदैव ही प्रार्थना से शुरू करें और उसमें इतनी आत्मा उँडेलें कि वह शाम तक निरन्तर हमारे साथ बनी रहे। अपने उपास्य के समक्ष अपनी दुर्बलता और अयोग्यता को स्वीकार करना ही सच्ची प्रार्थना है। कहा गया है कि प्रार्थना और सदिच्छापूर्ण प्रयत्न कभी व्यर्थ नही जाते। वे सदैव सार्थक और सफल ही होते हैं। एतदर्थ मानव-जीवन की सफलता ऐसे ही प्रयत्नों पर निर्भर करती है। फल तो ईश्वराधीन ही है। प्रार्थना आत्मा का भोज्य पदार्थ है। यह प्रार्थना ईश्वर को लिखा गया अन्तर्मन का पत्र ही है। जिसमे न कागज चाहिए, न कलम, न दवात और न शब्द ही। मात्र एकाग्रता ही उसमे पर्याप्त है। प्रार्थना का अर्थ सत्य का आचरण या सदाचरण है। जब तक जीव मात्र के साथ हमे एकता अनुभव न हो, तब तक प्रार्थना व्यर्थ ही है।

प्रार्थना जिह्वा में नही हृदय में भी होती है। इसीलिए गूँगे, तोतले तथा मूढ़ भी प्रार्थना कर सकते हैं। उसमे भाषा नहीं हार्दिक भाव चाहिए। जहाँ निष्काम कर्म का साकार रूप हमारे सामने आकर उपस्थित हुआ, वहीं प्रार्थना उसी कर्तव्य मे आकर समा जाती है। प्रार्थना मे कभी विभाजन नही हो सकता, वह सबके लिए तथा सर्व धर्म के अनुयायियों के लिए है। प्रार्थना का अर्थ कभी याचना करना नहीं

होता, वह तो सच्ची आत्मा की सही पुकार है। प्रार्थना अन्धविश्वास नहीं बल्कि वास्तविक आत्मा की सच्चाई है। अर्थ से रहित हमारा स्तोत्र-पाठ प्रार्थना नहीं है और न शरीर को भूखों मारना सही अर्थ में उपवास है। बापू ने कहा था, "सात्विक और सहृदय तथा सरल भाव से निकलनेवाली प्रार्थना ही सही प्रार्थना है।" प्रार्थना का आमन्त्रण निश्चय ही हमारी आत्मा की व्याकुलता का द्योतक है। यह पश्चात्ताप का भी एक चिह्न माना जाता है। यह प्रार्थना हमारी अधिक अच्छे और अधिक शुद्ध होने की आतुरता को सूचित करती है। अतः हमें अपना कोई भी काम बिना प्रार्थना किये नहीं करना चाहिए। क्योंकि मनुष्य का सबसे बड़ा सहारा ही प्रार्थना है। प्रार्थना किसी भी नाम से की जा सकती है। क्योंकि उसका वाहन तो मात्र भक्तिपूर्ण हृदय ही है। ईश्वर के असंख्य नाम हैं, हमें जो भी नाम रुचिकर लगे उसी की अर्चना या प्रार्थना कर सकते हैं। प्रार्थना वाणी से नहीं हृदय से होती है। हमारे सारे प्रयत्न प्रार्थना के बिना अधूरे ही रह जाते हैं, अतः जीवन में प्रयत्न के साथ-साथ प्रार्थना भी अनिवार्य ही है।

यह प्रार्थना मात्र नम्रता की पुकार ही नहीं है यह आत्मावलोकन एवं आत्मशुद्धि का आधार है। अतः प्रत्येक धर्म का सार प्रार्थना ही है। इसे धर्म और मानव-

तथा सायंकाल की साँकल कहा है। गांधीजी ने कहा था—"मुझे जो भी शान्ति या सफलता मिली है, वह सब प्रार्थना के द्वारा ही। क्योंकि इसमें ईश्वर के साथ सहकार हो जाता है।"

मनुष्य सदैव ही प्रार्थना के द्वारा प्रभु की कृपा और सहायता से अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। हमारे विचार यदि भ्रमित हों, हमारा पथ यदि भ्रष्ट हो, तो इन दोनों की शुद्धता के लिए, इनकी पवित्रता के लिए तथा इनकी सात्विकता के लिए हार्दिक प्रार्थना एक संजीवनी बूटी है। अतः अब तक के किये गये गलत कार्यों के लिए अथवा भूलों के लिए प्रायश्चित कर, आगे के लिए प्रार्थना [illegible] है और [illegible] हैं तभी [illegible] मनोरथ [illegible] बालकों [illegible] को सही सच्चा तथा प्रभावी रूप देकर हम बालक के साथ न्याय कर सकेंगे।

आइए! आज से ही हम सच्चे भाव और सच्चे मन से प्रार्थना कर जन-जन के कल्याण की कामना करें और मन की मलिनता दूर कर सर्वेश्वर से सबके उदय की भावना करें। प्रभु सबको ही सद्बुद्धि प्रदान कर सत्पथ पर अग्रसर करे, यही मंगल कामना है।

○○

मन का उफान

□ जयसिंह चौहान 'जौहरी'

यह जो मूल्यवान वस्तु मुझे तुम्हारे द्वारा उपलब्ध हो रही है मैं किंचित चिन्तन में हूँ कि इसकी कीमत तुमको चुकाऊँ तो कैसे और तुम यह कीमत लोगे तो कैसे ? तुम जो गुजरते हो अपनी डलिया में कई तरह के सुन्दर फूल और मालाएँ लेकर मेरे समीप से, उस काल मैं अनकही खुशबू से निहाल हो जाता हूँ। मैं कई दिनों से सोच रहा हूँ, तुम्हारे द्वारा मुझे दी जाने वाली इस अमोघ वस्तु की कीमत की अदायगी के विषय में। चूँकि दुनिया पैसा देकर फूल खरीदती है, किन्तु मैं फूल नहीं खरीदना चाहता। फूल लेकर जिस उद्देश्य की पूर्ति दुनिया करना चाहती है, मैं अनायास बिना कीमत चुकाये ही प्रतिदिन अपने स्थान पर बैठा उसकी प्राप्ति कर लेता हूँ। चाहे वह महक एक क्षण की ही क्यों न हो, मुझे रससिक्त कर देती है। मेरे हौसले को मूल्यवान कर देती है। जब मैं एक दिन तुम्हें इसकी कीमत चुकाने की बात करूँगा, तुम कई तरह के प्रश्न मेरे सम्मुख उपस्थित कर दोगे; और मैं शायद निरुत्तर हो जाऊँगा। उस समय तुम भी कह सकते हो, "भाई तुम फूल ही क्यों न खरीद लिया करते मुझसे।" परन्तु मैं तो फूल खरीदना ही नहीं चाहता। इसलिए नहीं कि मेरा खुशबू अधिगति का उद्देश्य बिना फूल खरीदे ही पूर्ण हो जाता है बल्कि मैं तो यों कहूँगा कि फूलों को हाथ लगाकर उनकी कोमलता और उनकी स्वच्छता से मैं खिलवाड़ नहीं करना चाहता। फूलों को छूने से वे मैले होते हैं। क्षण-क्षण अपनी मोहकता, कोमलता, और सौन्दर्य को खोनेवाले पुष्पों को मैं अपनी ओर से हाथों में लेकर उन्हें और क्यों अपावन करूँ, मैला करूँ, नष्ट करूँ। ऐसी धारणा से मैं सदैव फूलों से दूर रहना चाहता हूँ, बचना चाहता हूँ, उनको छूना नहीं चाहता। परन्तु उसकी कीमत यथावत चुकाना चाहता हूँ, जिसका लाभ मैं लम्बी अवधि से लगातार लिये जा रहा हूँ।

प्रकृति ने ओस की बूंदों को सजाने के लिए कोमल पखुड़ियों का विधान किया है। मोतियों को सहेजने के लिए सीपियो के गर्भ को रजत प्लावित स्निग्ध-श्वेत किया है। फूलों को सँवारने के लिए टहनियों के आलम्बन से बढ़कर और कोई हो नही सकता। हम लोग तो उन्हें छूकर अपवित्र कर देते हैं।

हाँ, तो मैं अपने विषय से परे नही जाऊँगा। एक अवसर की बाट देख रहा हूँ कि उस दिन मेरे रन्ध्रों में रिसकर अपने विपुल वैभव से मुझे उद्वेलित और अभिभूत कर देनेवाली अभिमन्त्रित सुगन्ध का मूल्य चुकाने के लिए मैं तुम्हे आमन्त्रित करूँगा।

दुनिया पुष्प खरीदकर उसका पैसा चुकाती है। मैं अनायास प्राप्त की गयी सुगन्ध की कीमत चुकाना चाहूँगा। आकस्मिक ही सही, मैंने उस वस्तु का उपभोग अवश्य किया है। और मेरी अन्तरात्मा यह महसूस करती है कि मैंने किसी से कोई वस्तु ली है। उसकी अदायगी कीमत के रूप में, पैसे के रूप में मुझे करनी है। इस विषय मे यदि मैं चुप हो जाता हूँ तो मेरी आत्मिक नैतिकता के पतन का प्रश्न बनता है, जो मुझ तक ही सीमित रहता है।

इधर यह भी मुझे ज्ञात है कि प्रत्यक्ष रूप मे मेरे सामने कोई उस सुगन्ध की कीमत का लेनदार नही है, परन्तु ऐसा सोचकर मैं अपनी आत्मा से जुड़े कर्तव्य से च्युत ही होऊँगा।

सेन्ट खरीदनेवाले हजारो रुपये खर्च कर उसका उपभोग करते ही हैं। मैंने भी तो खुशबू का उपभोग किया है। यों देखा जाय तो कुछ परिस्थिति में लोग वस्तु उधार लेकर भी उसका मूल्य चुकाने से मुकर जाना चाहते।

मुझे अपनी अन्तरात्मा अन्तर-नैतिकता के साथ अभिप्रेरित किये है, कीमत चुकाने के लिए। फिर चाहे ऊपरी नैतिकता का मुखौटा लगानेवाले लोग, चाहे मेरे इस कर्त्तव्य को विवेकशून्य और मेरी इस धारणा को तथ्यहीन ही क्यो न घोषित कर दे!

कभी-कभी लोग किसी से कोई वस्तु खरीदकर उसकी कीमत नही चुकाने के हथकण्डे में अपनी ऊपरी (दिखावटी) नैतिकता बहाल रखना चाहते हैं, परन्तु मेरे मन मे सुगन्ध की अप्रत्यक्ष प्राप्ति पर उसकी प्रत्यक्ष अदायगी को लेकर आनन्द का सागर उफान मार रहा है।

तत्सत्

□ विश्वनाथ पण्ड्या

अस्ति और नास्ति के बीच मानव चेतना सृष्टि के आरम्भ से लेकर द्वन्द्व ग्रस्त है। सृष्टि के रहस्य के प्रति जिज्ञासा भाव ने मानव दर्शन को दो भागों में विभक्त कर दिया। एक आस्तिक, जो सृष्टि से इतर किसी महासत्ता को, परमसत्य को स्वीकार करता है एवं—दूसरा नास्तिक, जो भौतिक जगत को ही सत्य मानता है। इस जगत के सिवाय वह किसी अन्य सत्य को नकारता है। लेकिन अब तक न तो ईश्वरवादी सत्य को प्रत्यक्ष कर पाये हैं और न ही अनीश्वरवादी सत्य को झुठलाने के ठोस प्रमाण जुटा सके हैं।

इन दो मतों के अनुयाइयों को लेकर दृष्टिपात किया जाय तो कहने को तो धार्मिक लोग संख्यात्मक दृष्टि से अधिक है पर वस्तुतः वे जिस ईश्वर में या धर्म में विश्वास करते हैं उसके बारे में यथार्थ ज्ञान उन्हे भी नही है। वे सस्कारवश धार्मिक हैं या वंश, जाति, देश या परिस्थितियो के कारण ही वे किसी महासत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। उसे ज्ञान नही, अन्धानुकरण ही कहा जा सकता है। दूसरी ओर यह कटु सत्य है कि तथाकथित बौद्धिक वर्ग को अनीश्वरवादियो ने ही ज्यादा प्रभावित किया है, क्योंकि बौद्धिक वर्ग, जिसे आजकल हम भ्रमवश विज्ञानवादी कहते है, सत्य का प्रमाण चाहते हैं और इन दिग्भ्रमितो को मिथ्या तर्कों से नास्तिक दर्शन ने सम्मोहित कर लिया है। उन्होंने ऐसे कई प्रश्न खड़े किये जिनका आस्तिक दर्शन के पास उत्तर नही है।

प्रश्न उठता है कि कब तक सत्यासत्य पर व्यक्ति चिन्तन ही करता रहेगा। क्या यह मान लिया जाय कि इस जगत के परे कोई सत्य नाम की वस्तु नही हो सकती? उधार का घृत पीकर सुखी बनने के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय? इस दर्शन को मान लेने मे तो कोई बाधा नही है पर इसके साथ ही कई

प्रश्न मानस मे एक साथ उठते हैं, समाधान चाहते है। पाश्चात्य सभ्यता या इसके समर्थक लोग जो 'इदम् सत्यम्' के प्रबल समर्थक हैं, सारी सुख सुविधाए एवं विलास को छोडकर नंगे पैर, मुड़े सिर, भगवे वस्त्र, 'हरे राम हरे कृष्ण' की धुन मे मस्त किसी रहस्य मे डुबकियाँ लगाते हैं तब हमें बाध्य होकर कुछ सोचना पड़ता है। यहां से फिर हमारे ठहराव को, हमारे द्वन्द्व को एक दिशा मिलती है, एक गति मिलती है।

सत्य की खोज में अब तक कई पथिक आगे बढ़े। चाहे वे, चाहे उनका पथ, उनका चिन्तन कोई भी रहा हो, पर विडम्बना यह हुई कि जो जहाँ रुका, जहाँ थका, वही उसने अपने विषय की घोषणा कर दी और आगे का पथ बन्द मा कर दिया। आज हम विश्व मे सारे धर्मों और अनुयायियो मे मत-वैभिन्य पाते है। इसका मूल कारण हमारी अधूरी यात्रा ही है।

सृष्टि के रहस्य के प्रति जिज्ञासा भाव ने हमे यह महसूस करवाया है कि इस सृष्टि का सर्जक, नियन्त्रक तत्व अवश्य होना चाहिए, जो सृष्टि के पूर्व और पश्चात सदा विद्यमान रहता है। उस सत्य की खोज का मुख्य आधार धर्म है। सत्य-साक्षात्कार के साधन स्वरूप जिस उपादान का हम सहारा पाते है वस्तुत. वही धर्म है।

आज हम धर्म नाम से जिस तत्व को अभिहित करते है वह वास्तव में धर्म नही सम्प्रदाय है। धर्म अन्धानुकरण नही हो सकता, धर्म अविवेकी नही हो सकता, धर्म देश, काल या व्यक्ति की सीमा में आवद्ध नही हो सकता है। महत् साध्य का साधन क्षुद्र नही हो सकता। धर्म को तर्कों से सिद्ध नहीं करना पड़ता, धर्म की रक्षा के लिए तलवार की आवश्यकता नही होती है। आज धर्म का जो स्वरूप हम देख रहे हैं वह हमारे मिथ्याभिमान का पर्याय है।

यह सत्य है या वह। यह द्वैध अवस्था हमारे अज्ञान के कारण है। सृष्टि की कोई भी वस्तु अपने दो रूपों मे नही हो सकती। ज्ञान-अज्ञान, प्रकाश-अन्धकार, सुख-दुःख, जीवन-मरण, सत्य-असत्य युग्म नही है। एक का अस्तित्व दूसरे के अभाव के कारण है। सत्य के होने का प्रमाण हमारा अन्त करण है जिससे वेद, उपनिषद और पुराण उद्भूत हुए हैं। सत्य इन्द्रियातीत, गुणातीत एवं रूपातीत है। सत्य की मात्र अनुभूति हो सकती है। आत्मा और सत् स्वरूप परमात्मा को एक बहती हुई सरिता और सागर के उदाहरण से सिद्ध किया जा सकता है। सरिता को सागर के साक्षात्कार के लिए अपने अस्तित्व को विलीन कर ही देना होता है और सत्य के साक्षात्कार पश्चात् सरिता अपना ही अस्तित्व नही रखती फिर वह सागर की विराटता को कैसे प्रमाणित करेगी। चाहे वेदकालीन ऋषि हो या उपनिषद्-कालीन चिन्तक, चाहे भक्त हो या कोई भी, सत्य साधक जब ध्यानमग्न अपनी अंगुली ऊपर उठा देता है तो हमें यह स्वीकार करना पडेगा कि उसे सत्यानुभूति हुई है और उसकी उठी हुई अँगुली यह अभिव्यक्त करना चाहती है कि 'सत्सत'।

वन देवी

☐ विष्णु लाल जोशी

जेठ की दुपहरी। सर्पाकार पगडण्डी, उड़ती धूल। चिलचिलाती धूप में आँखे चुँधियाता हुआ मैं बाँध के किनारे पैदल जा रहा था। सूखा बाँध। नग्न पहाड़ियाँ। साँय-साँय करती हवा। दूर-दूर तक मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी नजर नहीं आते।

पहाड़ी के ढलान पर किसी का करुण क्रन्दन सुनायी दिया। मैं उत्सुकतावश उसी दिशा की ओर बढ़ने लगा, जिधर से आवाज आ रही थी। पास जाकर देखा, एक कोमलांगी अपनी काया को फटे चीथड़ो में छिपाकर वृक्ष के तले बैठकर सिसकियाँ ले रही थी।'' तुम कौन हो देवी! क्यों विलाप कर रही हो?

मैं वन देवी हूँ पथिक। मैं रमणीय स्थानो में भ्रमण करती हूँ। यह स्थान, जो तुम निर्जन और सुनसान देख रहे हो कभी बहुत रमणीय था।

बाँध में भरा हुआ लबालब पानी। अठखेलियाँ करती हुई लहरें। उड़ते हुए पक्षियो का कलरव गान। पहाड़ों पर बबूल, नीम और सैजना के हरे-भरे वृक्ष। पलाश और सदाबहार गुलमोहर के मनभावन फूल और उनसे आती हुई भीनी-भीनी महक।

स्वार्थी मनुष्य ने अपने अहंकार के नशे में चूर होकर मेरे रमणीय क्रीड़ा-स्थल उजाड़कर तहस-नहस कर डाले। मैं मनुष्यो की अज्ञानता पर आँसू बहा रही हूँ। देखो, स्वार्थी मनुष्यों ने मेरा क्या हाल बना दिया है?

मानव अपनी करतूतो से बाज नहीं आ रहा है। वह धड़ाधड़ वृक्षो को काट रहा है। जगलो को उजाड़ रहा है।

अपने आपको सभ्य कहलाने का दम्भ भरनेवाले ओ मानव!

तुमने अपने मनोरंजन के लिए वन्य प्राणियो की अनेक प्रजातियों को ही समूल नष्ट कर डाला। अपने स्वार्थ के लिए दूसरो की जान लेना, क्या यही सभ्यता है?

चारों तरफ सूखा पड़ा है। सरोवर सूखे पड़े हैं। मनुष्य एक-एक बूंद पानी के लिए तरस रहा है। पशु चारे के बिना दम तोड़ रहे हैं। गरीबों को दो जून रोटी भी नसीब नहीं होती। प्रदूषण का प्राणलेवा विष फैलता जा रहा है।

प्रकृति से नाता तोड़कर तुम्हें क्या मिलेगा? भयंकर महाकाल के दुष्परिणाम तुम भुगत रहे हो। फिर भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं। महाकाल आनेवाले कल के लिए आगाह कर रहा है। चेत जाओ! अब भी समय है। समय रहते चेत जाओ वरना आनेवाली पीढ़ियों को देने के लिए तुम्हारे पास दुःख, संघर्ष और यातनाओं के सिवाय कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

वन देवी

☐ विष्णु लाल जोशी

जेठ की दुपहरी। सर्पाकार पगडण्डी, उड़ती धूल। चिलचिलाती धूप में आँखें चुंधियाता हुआ मैं बाँध के किनारे पैदल जा रहा था। सूखा बाँध। नग्न पहाड़ियाँ। साँय-साँय करती हवा। दूर-दूर तक मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी नजर नहीं आते।

पहाड़ी के ढलान पर किसी का करुण क्रन्दन सुनायी दिया। मैं उत्सुकतावश उसी दिशा की ओर बढ़ने लगा, जिधर से आवाज आ रही थी। पास जाकर देखा, एक कोमलांगी अपनी काया को फटे चीथड़ों में छिपाकर वृक्ष के तले बैठकर सिसकियाँ ले रही थी।" तुम कौन हो देवी! क्यों विलाप कर रही हो?

मैं वन देवी हूँ पथिक। मैं रमणीय स्थानों में भ्रमण करती हूँ। यह स्थान, जो तुम निर्जन और सुनसान देख रहे हो कभी बहुत रमणीय था।

बाँध में भरा हुआ लबालब पानी। अठखेलियाँ करती हुई लहरें। उड़ते हुए पक्षियों का कलरव गान। पहाड़ों पर बबूल, नीम और सैजना के हरे-भरे वृक्ष। पलाश और सदाबहार गुलमोहर के मनभावन फूल और उनसे आती हुई भीनी-भीनी महक।

स्वार्थी मनुष्य ने अपने अहंकार के नशे में चूर होकर मेरे रमणीय क्रीड़ा-स्थल उजाड़कर तहस-नहस कर डाले। मैं मनुष्यों की अज्ञानता पर आँसू बहा रही हूँ। देखो, स्वार्थी मनुष्यों ने मेरा क्या हाल बना दिया है?

मानव अपनी करतूतों से बाज नहीं आ रहा है। वह धड़ाधड़ वृक्षों को काट रहा है। जंगलों को उजाड़ रहा है।

अपने आपको सभ्य कहलाने का दम्भ भरनेवाले ओ मानव!

तुमने अपने मनोरंजन के लिए वन्य प्राणियों की अनेक प्रजातियों को ही समूल नष्ट कर डाला। अपने स्वार्थ के लिए दूसरों की जान लेना, क्या यही सभ्यता है?

चारो तरफ सूखा पड़ा है। सरोवर सूखे पड़े है। मनुष्य एक-एक बूंद पानी के लिए तरस रहा है। पशु चारे के बिना दम तोड़ रहे हैं। गरीबो को दो जून रोटी भी नसीब नही होती। प्रदूषण का प्राणलेवा विष फैलता जा रहा है।

प्रकृति से नाता तोड़कर तुम्हें क्या मिलेगा? भयंकर महाकाल के दुष्परिणाम तुम भुगत रहे हो। फिर भी तुम्हारी आँखे नही खुली। महाकाल आनेवाले कल के लिए आगाह कर रहा है। चेत जाओ! अब भी समय है। समय रहते चेत जाओ वरना आनेवाली पीढ़ियो को देने के लिए तुम्हारे पास दुःख, संघर्ष और यातनाओं के सिवाय कुछ भी शेष नही रहेगा।

आत्म-स्पर्श

☐ विश्वम्भरप्रसाद शर्मा

जीना एक कला है। सुरम्यता है। होनी चाहिए सुरुचि। जीवन महकता है। एक सरसता, सौम्यता प्रतिक्षण जीवन रस बरसाती है। दिव्य भावों के साथ। ठुमक-ठुमककर क्षण मुस्कराते है। इन नन्हे बाल अबोध क्षणो में कोई धीरे से जन्म लेता है।

नन्ही-तूलिका से आत्म-स्पर्श ज्ञान-चित्रों को उकेर देते हैं। मुस्कराती रेखाएँ प्यार से कुछ कह रही हैं। हम मन-ही-मन मुखर हैं। अन्तर्मन ज्योतिर्मय है। जीना एक मजा है, मजा आ गया जीने का। कुछ ऐसे ही भाव उमड़ते है। बरसती हैं; कला-मंजूषा के पृष्ठों पर।

मैं नन्हें बच्चों की तूलिका को झूमकर चूमता हूँ। एक स्पर्श सुवासित हो आन्तरिक सौन्दर्य को जन्म देता है। क्यो ऐसा ही है न ! उमड़ते भाव।

झूमती-तूलिका और बरसते चित्र एक नयी दृष्टि को नये आयाम से नये जगत को जन्म देते हैं। मन्त्र-मुग्ध है।

बाल अबोध मण्डली। जीने का ज्ञान नही। जी रहे है; भान नही पर जीने का जो आनन्द होना चाहिए।

अबोध क्षण अपने मे कितने सुबोध हैं। जिन्दगी इन रेखाओ मे स्निग्ध है। बस ! एक लमहा हमे प्यार करता है। यह हम ही जानते हैं।

मन-ही-मन मधुर-मधुर सपना सोता है। इन रेखाओं में।

सचमुच रेखाओ मे जीवन बोलता है। रेखाएँ बोलती हैं।

○ ○

पूर्व दिशा वही है

□ विमला डोरथी

उदात्तीकरण—औदार्य का गुण। संस्कार-युक्त जीवन बनने पर जिस सौन्दर्य का निर्माण होता है, भीतर की सुन्दर व्यवस्था बनती है, यह उसी का परिणाम है।

ईश्वर ने हमें शक्ति और उत्साह दिया है। इनकी सुन्दर व्यवस्था और उपयोग हमें करना है। अतः अपने पास जो वस्तु है, उसका रक्षण करना, तरतीब से रखना, ठीक तरह से उसका उपयोग करना आना चाहिए। यदि यह न आता हो तो वस्तु के रहते हुए भी वहाँ सौन्दर्य नही। केवल अच्छे वस्त्र से काम नही चलता, उसका ठीक तरह से उपयोग भी आना चाहिए। शान का सौन्दर्य उपयुक्त है। अतः सौन्दर्य अनुभुक्त है।

हमारे पास शक्ति है, वह सब हम धन्धे, व्यापार या नौकरी में व्यय करते हैं। हमारे पास उत्साह है, वह सुबह से शाम तक हम व्यस्त रहकर समाप्त करते हैं। विषयों का उदात्तीकरण नही करते।

श्रीमदाद्यशंकराचार्य ने विषयों को व्यापक रूप में दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा है। हमने विषय के अर्थ को स्त्री-पुरुष सम्बन्ध तक मर्यादित कर लिया। विषयों का उदात्तीकरण-भाव ही जीवन-सौन्दर्य तक ले जा सकता है।

ईश्वर ने हमें अनन्त विकार भी दिये है। ईश्वर-प्रदत्त विकार हमने किस तरतीब से रखे, उनका उपयोग कैसे किया, मूल प्रश्न यही है। जिसने स्वयं के भीतर अच्छी रीति से विचारों की रचना की, उनको उपयोग मे लिया, उसी के पास सौंदर्य आया। ऋषियो को विकारो को सँभालना, उनका उपयोग करना आता था। एक भी ऋषि ऐसा नही हुआ, जिसे क्रोध नही आया, फिर भी वे मुक्त हुए। असल में उन्होने सभी विकारो को जीवन मे ठीक रीति से संजो रखा था, ठीक तरह से उसे प्रयुक्त करते, उपभोग करते, इसीलिए उनके जीवन मे सौन्दर्य दिखायी दिया।

वाल्मीकि का जीवन सुन्दर था। उनका जीवन अनुपभुक्त था। दूसरे किसी को उस सौन्दर्य का उपभोग लेने को नही मिलता था, कारण, उन्हे इसका ज्ञान ही नही।

जिस सौन्दर्य की अपनी सुगन्ध है, वही आत्मिक सौन्दर्य है। उसी को स्वान्तः सुखाय कहते हैं। यही अनुभुक्त सौदर्य है। इस आनंद के वैभव को नही बढ़ाकर हम कृपण बन गये। वाल्मीकि के पास अधिक करुणा होगी हमारे पास कदाचित कम। प्रश्न कम या अधिक का नही! जो शक्ति हमे मिली है, उसको रखा कैसे, कैसे उसका उपयोग किया, प्रश्न यह है? उन्होंने अपनी शक्ति और उत्साह को यथा समय और यथास्थान प्रयुक्त किया। इसीलिए, उनके जीवन मे एक भिन्न सुगन्ध मिलती है। वस्तु अल्प प्रमाण में होते हुए भी अच्छा ससार चलाकर दिखानेवाली गृहिणी अच्छी है, ऐसा कहा जाता है। विपुलता से भी कभी-कभी मनुष्य घबरा जाता है। कहता है—'मैं इन सबका क्या करूँ'। उस विपुलता को सँभालना, हस्तगत करना, उपयोग करना, यही जीवन की कला है। ऊँचाई विचारो की होनी चाहिए। जीवन की होनी चाहिए। कर्त्तव्य के नाते कुछ करना, यह एक सामान्य बात है। 'विकासार्थ करना', इसमे जीवन की ऊँचाई है।

कुछ [illegible]
नही है। उदार मनुष्य भिखमगे को अच्छे लगते है, फिर वह व्यक्तिगत भिखारी हो या सामाजिक भिखारी—(रॉयल बेगर)। ये सभी सौन्दर्य उपयुक्त है। मानव का विकसित किया हुआ सौन्दर्य ही अनुपभुक्त है अर्थात उसका उपभोग कोई नही ले सकता।

वेदान्त कहता है जीवन मे न कुछ कमाना होता है, न कुछ गँवाना होता है, जो प्राप्त है उसी को सँभालना, उपयोग करना, मनुष्य का काम है। ऐसा उदात्तीकरण हो जाने पर अविद्या चली जाती है। आत्मिक सौन्दर्य खिल उठता है।

'उदयति दिशी यस्यां भानुमान सैव प्राचि'—जिस दिशा मे सूर्य उदय होता है, वही पूर्व दिशा है। दिशाओं की पराधीनता सूर्य को नहीं।

असतो मा सद्गमय

□ बैजनाथ शर्मा

शीर्षक वेदमन्त्र का एक अंश है। उस वेदमन्त्र का जिसमे मानव की भावनाओं एवं कर्मों का स्वरूप और जीवन का सार निहित है। लाखों पुजारियों, करोड़ों विद्यार्थियों और उनके शिक्षकों को पूरी तरह कण्ठस्थ है। प्रतिदिन दुहराना ही पड़ता है—

असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतम् गमय।

शब्दों का अपना स्थान है, अपना ही क्रम और अर्थ की अपनी गहनता। मृत्यु का भय उसी को सताता है जो अज्ञानी है और अज्ञानी वही है, जिसे सतासत् की सूझ नही। मृत्यु का भय संसार का महानतम भय है। संसार में शायद ही कोई ऐसा सन्त हो जिसे यह भय न सताता हो। मृत्यु के भय की इस कसौटी पर हम सभी अज्ञानी हैं। हम सभी ने सामान्यतः वे ही पुस्तकें पढ़ी हैं, जिनमें इस भय से मुक्ति का मार्ग मिलता ही नहीं। इसलिए पढ-लिखकर भी हम जीवन की सार्थकता के सन्दर्भ में अज्ञानी हैं। इसलिए बाबा कबीर जब कहते हैं कि—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥

तो वे ठीक ही कहते हैं।

जीवन-मरण सृष्टि का क्रम है। चलता ही रहेगा। यह क्रम सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। इस क्रम में कोई अन्तर भी नही आया। अनादि काल से चलता आ रहा है और चलता ही रहेगा। जिसने जन्म लिया है उसे मरना ही पड़ेगा।

फिर अमरत्व कहाँ ? और फिर, जिस मृत्यु के भय से सभी भयभीत हैं, उस भय से यदि छुटकारा मिल भी जाय, जो आया है उसे जाना न पड़े, तो सृष्टि का क्रम ही मिट जाय। इस भू-पटल पर ऐसा कोई दिखायी भी नहीं देता जो जन्म लेने के बाद मरा न हो। सभी का मरना सुनिश्चित है। अरबों, खरबों लोगों ने जन्म लिया, जिये और चले गये। कोई जानता तक नहीं। कुछ की कहानियाँ इतिहासों में अवश्य लिखी हैं। कुछ इने-गिने ऐसे भी हैं, जिन्हें इस संसार से विदा हुए सदियाँ बीत गयीं, परन्तु आज भी जन-जन की जबान पर जीवित हैं। यही अमरत्व है।

इस अमरत्व को चाहते सभी हैं, पर पाते कुछ विरले ही हैं। यह अमरत्व यों ही नहीं मिल जाता। बड़ा त्याग चाहता है। त्याग, उसका जो हमें भाता है; त्याग, उसका जो हमें सुहाता है। भाना और सुहाना दोनों ही व्यक्ति और परिस्थिति-सापेक्ष्य हैं। जो देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट लगे वह हमें भाता है; जो सुनने में सुहावना, सूँघने में सुगन्धित और स्पर्श से कोमल प्रतीत हो, वह हमें सुहाता है। परन्तु सुहाने और भाने की यह शाश्वत पहिचान नहीं। किसी को सिनेमा के गीत सुहाते हैं तो किसी को भगवान के भजन। ये सब ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। ज्ञानेन्द्रियों पर जब मान, मत्सर, मोह, काम, क्रोध, मद, लोभ आदि भौतिक आकर्षणों से उत्पन्न भावनाओं का आवरण पड़ जाता है तो हमें संसार का वास्तविक रूप दिखायी नहीं देता। जो दिखायी देता है वह आवरणमय है, वास्तविक नहीं अवास्तविक है। अवास्तविकता को वास्तविकता मान बैठना ही सबसे बड़ा भ्रम है, अज्ञान है। अज्ञान ही अन्धकार है और पतन का प्रमुख कारण भी। सच्चा ज्ञान कुछ और है। वह शाश्वत है, उसका अन्त नहीं होता। यह ज्ञान पुस्तकों के पठन एवं श्रवण मात्र से प्राप्त नहीं होता। वह ज्ञान इन इन्द्रियों से परे का विषय है। उस परे को पार करने के लिए चिन्तन, मनन और मन के चक्षुओं को खोलने की आवश्यकता है, जप, तप की आवश्यकता है। माला की मनियों के उस जप की नहीं जिसके लिए बाबा कबीर मना करते हैं। साफ साफ शब्दों में कहते हैं—

जप माला छापातिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे राम॥

वह तो काठ की माला के माध्यम से मन के फिराने की बात कहते हैं।

कबिरा माला काठ की, कहि समुझावें तोहिं।
मन न फिरावै आपुनो, कहा फिरावै मोहि॥

मन का फिराना ही सच्चा ज्ञान है। मन का फिराना किससे ? मन का फिराना—उस लोभ, मोह, मत्सर आदि से जो मन और अन्धकार में सच्चा प्रकाश पाने ही नहीं देते। इसीलिए वेदाभ्यासी कहता है—तमसो मा ज्योतिर्गमय।

यह अक्षुण्ण प्रकाश—तेल और बाती का नहीं, बिजली का नहीं, चाँद और सूरज का भी नहीं। यह प्रकाश कुछ और ही है। यह कभी बुझता नहीं। इस पर

आंधी, तूफान जैसे प्राकृतिक प्रकोपों का भी प्रभाव नही पड़ता। इस प्रकाश को कोई आवरण भी नही ढक पाता। बड़ा अद्भुत है यह प्रकाश। यह किसी को दिखायी नही देता। इसकी तो केवल अनुभूति होती है। वह अनुभूति जो बड़ी अलौकिक है। इस अनुभूति को बिरले ही कर पाते हैं और जो कर लेते हैं—उन्हें यह बाह्य जगत बन्धन जान पड़ता है, असत् जान पड़ता है। उन्हें सत् और असत् का भेद साफ दिखायी देने लगता है। वह भली-भाँति समझने लगते हैं कि इन्द्रिय सुख, सुख नही, भुलावा है। उनके लिए यह संसार एक बन्धन है [illegible] जिसकी कोई सीमा नही, जो स्वतः ढीला और कड़ा होता रहता है। इसे काटना कठिन है परन्तु असम्भव नही। इसे सत् और असत् के बीच भेद स्थापित कर सत के साथ चलने तथा असत् के मार्ग से मन को मोड़ने से ही काटा जा सकता है। परन्तु यह कौन बताये कि क्या सत् है और क्या असत्? इसके लिए सच्चे गुरु की आवश्यकता है। इसीलिए बाबा कबीर की नजर मे 'गुरु' गोविन्द से बड़ा है।

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय॥

बाबा तुलसी के शब्दों मे यह समझाना गुरु का ही काम है कि—

परहित सरिस धर्म नहि भाई।
पर पीडा सम नहि अधमाई॥

परहित सत् है और परपीड़ा असत्। परहित की भावना से प्रेरित—सहयोग [illegible] प्र-प्रेम, राष्ट्रभक्ति, समाज-सेवा [illegible] असत् है। सत् में ही ईश्वर का वास है और ईश्वर को देखना ही अलौकिक आनन्द की अनुभूति। प्रभु बड़े पारखी हैं। अज्ञानवश किये गये उसके असत् कर्मों के लिए भी उसे क्षमा कर देते है। उसके दोषों पर ध्यान तक नही देते।

जहाँ दया तहँ धर्म है,
जहाँ क्षमा तहँ आप।

[illegible] और क्षमा में ही है। ये ही सत् हैं। वेद- [illegible] के इन गुणों को भूले नहीं अपितु इनका अनुसरण करे। वह प्रभु से प्रार्थना करता है—

असतो मा सद् गमय।

असत् ही अज्ञान है, अन्धकार है और अज्ञान ही मृत्यु। इसके विपरीत सत् ही ज्ञान है, प्रकाश है और सच्चा ज्ञान ही अमरत्व। जिसकी भावनाएँ सत् है, जिसकी क्रियाएँ सत् है, वही सच्चा ज्ञानी है और वह कभी मरता नही, अमर है।

उड़ चला लेकर पैगाम

☐ उमा चतुर्वेदी

जी हाँ, जाना पहचाना हूँ। मैं तरह तरह के पैगाम लेकर उड़ता हूँ। सुबह हो या शाम बस उड़ता ही रहता लेकर पैगाम। जी हाँ यही मेरा काम है। नहीं जान पाए न मुझे! जाने भी तो कैसे; मैं तो अपने आपको एक अदना सा खिदमतगार मानता हूँ। फिर आज के युग मे मेरी पहचान समाजवाद के प्रचारक के रूप में बन पायी है। क्या तो गरीब और क्या अमीर सभी मुझे चाहते हैं। काम ही कुछ ऐसा करता हूँ जिससे मेरी पूछ होती है।

आप मानें या न मानें पर यह सही है कहीं तो मैं खुशियो का खजाना लुटाता हूँ, कहीं से आँसुओ की सौगात पहुँचाता हूँ। कहीं बिछुड़े दिलों को मिलवाता हूँ तो कहीं आहों की सिसकारियाँ सुनवाता हूँ। मैं एक जगह से दूसरी जगह पहुँच कर अपनी अन्तिम यात्रा का पड़ाव लगाता हूँ। इसके बाद मैं उस पतंग की तरह हो जाता हूँ जो दाँव पेच में उलझकर पहली और अन्तिम बार अपना सब कुछ दाँव पर लगा चुकी हो।

धड़कते दिलो की धड़कन सुनता हूँ। विरह मे जलनेवाली विरहिणी की विरह गाथा का रुदन देखता हूँ। प्रेमी-प्रेमिकाओं को हृदय तंत्री के तारों की झंकार सुनता हूँ। गरीबों की गिड़गिड़ाहट और अमीरो के मालामाल होने की झनझनाहट भी देखता हूँ। इसके बावजूद भी मैं जितना पचाता हूँ उसकी मिसाल कहीं नही मिलेगी। लोगों को कानोंकान खबर तक नही होती कि मैं क्या लेकर आया हूँ।

प्रतीक्षारत स्त्री पुरषो के कलेजो पर उस समय छुरियाँ चल जाती हैं जब मैं समय पर नही पहुँचाया जाता। मैं जब अपने अन्तिम पड़ाव पर पहुँचता हूँ तो मुझे पानेवाला सन्तोष की साँस लेता है। भिन्न-भिन्न स्थानो से आये मेरे सभी

भाई बहन भी मेरे साथ होते हैं। उनमें से कई की शक्लें देखकर ही पानेवाला उस कहावत को चरितार्थ करता है कि लिफाफा देखकर ही जैसे वह मजमून भाँप गया हो।

मेरी जिन्दगी एक लम्बी यात्रा के बाद दम तोड़ देती है। मनुष्य की जिन्दगी लम्बी होती है पर पानी के बुलबुले की तरह दम तोड़ देती है। लोग कहते हैं दुनिया चमक देखती है, पर मैं कहता हूँ दुनिया नवीनता देखती है। बात अस्तित्व की है। जब किसी का अस्तित्व ही दाँव पर लगा दिया जाये तो वह क्या तो चमक देखेगा और क्या नवीनता। कोई भी पानीदार व्यक्ति यह पसन्द नहीं करेगा कि उसकी जिन्दगी से खिलवाड़ की जाये। लेकिन मैं तो बेजान हूँ, मेरी जिन्दगी का कोई हिसाब-किताब नहीं। जब जिन्दगी का चिराग दूसरों की भलाई करते-करते धुँआ उगले तो यह उसकी जिन्दगी का दूसरा पक्ष है। मुझे भी अपनी जिन्दगी की यात्रा पर निकलते वक्त बड़ी बेरहमी से ठपा-ठप ठप्पे लगाकर कालिख पोत दी जाती है। इस निर्दयता पूर्ण व्यवहार को देखकर मैं सिहर उठता हूँ। फिर सोचता हूँ व्यवस्था पक्ष सहृदयता के हाथों की कठपुतली नहीं है बेरहमी। और निर्दयता व्यवस्था की गाड़ी के दो पहिए हैं जिसे तत्परता के कोड़े से चलाया जाता है।

व्यवस्था के संचालकों से मुझे कोई शिकायत नहीं। यह तो मात्र उनका फर्ज है। सोचिए, भला ऐसा कौन नौकर होगा जो चाकरी की चाकरी करे और बदले में धड़ाधड़ ठप्पे की मार सहन करके भी ईमानदारी से नौकरी बजाए? जिस तरह का सलूक लोग मेरे साथ करते हैं उसका नजीर इस दुनिया में मिलना मुश्किल है पर क्या किया जाये, यही मेरी नियति है यह मानकर सन्तोष कर लेता हूँ।

मैं अपने वास्तविक रूप में जीना चाहता हूँ पर लोग मुझे मुखौटे लगाकर जीने को मजबूर करते हैं। पशु-पक्षियों से मुझे अत्यधिक लगाव है। इसलिए मैं उनके मुखौटे लगाकर आनन्द महसूस करता रहा। इसके बाद तो मेरा अस्तित्व ही बंट गया। मैं विविध रूपों बना दिया गया। नेताओं, कवियों, महापुरुषों और सन्तों की संस्कृति का प्रचारक बनकर घूमता रहा। अब पुरातत्व की वस्तुओं का मुखौटे लगाकर प्राचीन संस्कृति का उद्घोषक बन गया हूँ। आप मानें या न मानें पर मेरा यह बहुरूपिया रूप स्वयं मुझे कचोटता है, पर क्या करूँ व्यवस्था पक्ष का यही तकाजा है, इसलिए चुप रह जाता हूँ।

पता नहीं किस मनहूस घड़ी में मेरा जन्म हुआ कि मैं विविध रूपा संस्कृति का पोषक बनकर अपने कुनबे को बढ़ाता ही जा रहा हूँ। इस प्रकार अपनी वंश वृद्धि से मैं चिन्तित नहीं हूँ। जानते हैं क्यों? इसलिए कि मेरे कुनबे का बढ़ना किसी भी कदर खतरनाक नहीं है।

मेरी इस वंश वृद्धि में राष्ट्रीय आय में वृद्धि जरूर होती है लेकिन इतना होने पर भी कोई नहीं जानता कि मैं कितना दुःखी हूँ। दूसरी तरफ लोगों ने जनसंख्या बढ़ाते रहने का बीड़ा उठा रखा है। वे कीड़े-मकोड़ों की तरह बढ़ते जा रहे और अपनी वंशवृद्धि पर फूले नहीं समा रहे है। और तो और राष्ट्रीय आय में कमी करने पर तुले हुए है। इसके दुष्परिणामों को वे नहीं जानते। मुझे तो लगता है कि मेरी वंशवृद्धि की रामकहानी और लोगों की वंशवृद्धि की कहानी अगर इसी तरह दोहराई जाती रही तो अगली शताब्दी के आने तक जाने क्या कहर ढायेगी !

स्वामी-भक्त कहलाने वाला कुत्ता अपने मालिक के आने पर उसके पाँवों में लोटता है, पाँव चाटता है, और अपने आनन्द की अनुभूति करता है। मैं जब इस स्थिति को देखता हूँ तो अपने भाग्य पर रोना आ जाता है कि जब लोग मुझे चूमने के बजाय मेरी पीठ चाटकर एक जगह टिका देते हैं, मैं समझ जाता हूँ कि अब मुझे लम्बी यात्रा पर भेजने के लिए अन्ध कूप में धकेला जायेगा। इस समय मुझे दुःख जरूर होता है लेकिन मैं अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता। उस अन्ध कूप में विभिन्न स्थानों पर जानेवाले अन्य भाई भी वहाँ अपना रोना रोते हुए मिल जाते है, जो विविध प्रकार के मुखौटे लगाए हुए होते है। मैं अपना दुःख भूलकर उनके दर्द को सुनने में तल्लीन हो जाता हूँ। अन्धकूप की यातना झेलने और आत्मोत्सर्ग करने व इच्छुक अपने भाइयों से मैं यही कहता हूँ कि तुम विविध आकार-प्रकार, रूप-रंग और सज-धजवाले बनकर अपने जीवन की अन्तिम यात्रा पर जा रहे हो, तुम्हें पाकर लोग सुख-दुःख की अनुभूति करेंगे। तुम्हारे त्याग और कर्तव्य की मन-ही-मन प्रशंसा करेंगे। अन्धकूप के अन्धकार को जिसने पा लिया वह राष्ट्रवीर अमरता के प्रकाश का भागीदार बन जाता है। इसलिए चिन्ता मत करो और जीवन के सत्य को पहचानो। अन्धकार के बाद प्रकाश आता है वही प्रकाश हरेक को चरमोत्कर्ष की ओर ले जाता है।

दुनिया की चकाचौंध मैंने खुली आँखों से देखी है। यह भी देखा है कि हमें हथियार बनाकर लोग कैसे-कैसे खेल खेलते है। लोगों की स्वार्थपरता ने मेरा अस्तित्व ही डाँवाडोल कर दिया। काश मनुष्य अगर स्वार्थलोलुप न होता तो इस तरह की यातनाएँ तो नहीं झेलनी पड़ती। मैं ही नहीं अपितु मेरे सभी भाई बहन मनुष्यों की इस निष्ठुरता को देखकर सिहर उठते है। जिस तरह सांड को दागा जाकर सूरज मांड की पहचान बनाई जाती है, उसी प्रकार अन्धकूप से निकालकर मुझे छापा जाता है और लम्बी यात्रा पर जाने का परमिट दे दिया जाता है। सोचिए नोटों में और हम में कितना अन्तर है ! उन्हें न तो दागा जाता है न मोहर लगाई जाती है।

मैं वह समय भी याद कर रहा हूँ जब राजा महाराजाओं, नवाबों, बादशाहों ने कबूतर पालकर उन्हें प्रशिक्षित किया था। उस समय कबूतर में इतनी सूझ-बूझ

और समक्ष-वृक्ष थी कि प्रेमी का सम्वाद उसकी प्रेयसी को ही पहुँचाते थे या सेना का सवाद राजा महाराजा या नवाब-बादशाह को ही पहुँचाते थे लेकिन आज यह बात नही है। उस कबूतर के लिए तो आज भी प्रतीक चिन्ह के रूप मे प्रचार-प्रसार का मोटो बना रखा है। शान्तिप्रिय कबूतर को भी लोगो ने नही छोडा तो औरो की क्या बात कहूँ।

अब इतना जान लेने के बाद यह तो जान ही गये होगे कि मै कौन हूँ। न जान पाये हो तो अपने इष्ट मित्रो को पत्र लिखिए फिर देखिए किस फुर्ती से मैं उनके समाचार अपने सीने मे दबाकर लाता हूँ। मै ही तो हूँ आपका मित्र—पत्र।

० ०

अफसोस

□ मोहनयोगी

—अकाल ऐसा पडा कि सभी पशु-पक्षी, मनुष्य अकाल की चपेट में आ गये। मनुष्यों को दो जून की रोटी नसीब होनी मुश्किल हो चुकी थी। गाँव में सरकार ने अकाल-राहत कार्य शुरू करवाया था। तालाब की खुदाई हो रही थी। इसी गाँव का मोतीदान मेट बना था।

—जब किसी को थोड़ी देर हो जाती या टोकरी मे मिट्टी कम होती थी तब वह भली-बुरी कहता था। सुनने वाला सिर्फ आँख दिखाकर ही रह जाता था। यही मोती पहली मे साथ पढने आता था। पाँच पढ़ लिया, मानो मीर मार लिया।

— गाँव के शंकर ब्राह्मण का लड़का प्रेम ग्यारहवी पढकर अध्यापक बन चुका था। उन दिनो वह गाँव के उसी विद्यालय मे अध्यापक था। प्राथमिक विद्यालय पचायत समिति के अधीन था। दूसरे अध्यापक पास के गाँव से पढ़ाने आते थे।

—एक रोज गाँव वाले अध्यापक ने पिटायी कर दी। क्योंकि मैं पढ नही रहा था। स्कूल की छुट्टी हुई और मैं रोता हुआ घर गया। माँ को सभी कुछ कहा और जोर-जोर से रोने लगा। माँ ने मोती के घर जाकर उसे पूछ-ताछ की। हमारी तो पहले से ही बात तय की हुई थी। उसने आग मे घी का काम करने वाली बातें ही कही थी। माँ मेरी बाँह पकडे चल पडी— स्कूल की ओर···

—माँ स्कूल पहुँचते ही पिटाई करने वाले अध्यापक के साथ झगडा करने लगी थी। मैं माँ का हाथ पकड़े रो रहा था। सभी अध्यापक इकट्ठे हो चुके थे। माँ ने तब पीछा छोडा जब सभी अध्यापको ने माफी चाही थी। फिर क्या था? मैं दूसरे रोज स्कूल गया।

— अध्यापकों ने मेरी तरफ ध्यान नही दिया। मै खेलता, झगडा रहता था। चार वर्ष तक पहली कक्षा मे फेल होता गया। अन्ततः मुझे विद्यालय छुड़वा दिया गया था। अब गाँव में 'प्रौढ शिक्षा केन्द्र' खुला है। मेरी उम्र भी सोलह वर्ष की हो चुकी है मैं पढ़ूँगाऽऽऽऽऽ। माँ ने झकझोरा—"छोरा! देख, दिन कितना चढ आया है। क्या आज काम पर नही जायेगा" तभी आँख खुल चुकी थी।

○ ○

महाकाल की मिनी कहानियाँ

☐ छगनलाल व्यास

विज्ञान

रेडियो शुरू करते ही कानों में आवाज पड़ती है—'कम पानी'''कम सन्तान '''पानी की एक-एक बूंद बचाइये'''इससे किसी को राहत मिल सकती है''' जीवनदान मिल सकता है'''।'

हूँ'''क्या महाकाल है'''! खून का स्थान पानी ने ले लिया है। पहले विज्ञापन आता था—'खून की एक-एक बूंद कीमती है'''इससे किसी का जीवन बच सकता है'''रक्तदान'''महादान।'

पानी'''वास्तव में इस वर्ष खून से भी महंगा हो गया है और अभी तो मई-जून में इसके दर्शन भी दुर्लभ होंगे क्योंकि अभी से दो-दो तीन-तीन दिन से पानी आ रहा है तब फिर क्या आशा रखें!

किसी भी शहर में पधार जाइये'''रोटी मिल सकती है लेकिन पानी नहीं''' राशन से पानी'' वॉटर ट्रेन...पानी की चोरी'''पानी के लिए एफ० आई० आर० दर्ज'''बच्चों को बस्ते के साथ पानी की केतली'''होटलों पर चाय के साथ पानी माँगकर शर्मिन्दा न करें जैसी नवीन बातें इस महाकाल में ही तो सामने आयी ''!

कुछ दिनों बाद विज्ञापन आने शुरू होंगे सफाई/निर्माण कार्य के साथ स्नान पर पाबन्दी और शायद आतंककारी को पकड़ने पर इनाम की भाँति स्नान करते हुए पकड़ने पर भी इनाम की घोषणा का भी विज्ञापन निकलने के आसार हैं।

चोरी और सीना जोरी

प्रायः सवेरे उठते ही श्रीमतीजी 'चाय' बनाती नजर चढ़ती। लेकिन अब यह मात्र स्वप्न रह गया। अब तो उनसे भी पहले हमें जगना होता है'' पानी की

लाइन में खड़े रहने के लिए'''तेवर चढ़ाकर जिसकी लाठी उसी की भैंस मुहावरे को चरितार्थ करने के लिए'''जब तक नल से एक-एक बूँद गिरती है तब तक आशा अमरधन की भाँति आँखें फाड़े बैठे रहते हैं।

फिर दूध का ख्याल आता है। हर दूध वाले से पूछना पड़ता है—दूध है?

—उनके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती'''। मानो नेतागीरी का प्रशिक्षण ले रहे हों'''कि जनता की आवाज पर ध्यान मत दो। खैर'''कोई 'हाँ' कहकर साइकिल के ब्रेक लगाता है तो हम फूले नहीं समाते। जब एक लीटर की फरमाइश करते हैं तो तोप की जगह तमंचे की भाँति पाव लीटर मिलता है'''।

दूध परखते हुए—भाई साहब इसमें पानी अधिक हैं'''।

पानी! कहाँ पड़ा है पानी'''लोगों को तो पीने को नहीं मिलता और आपको दूध में मिला हुआ दिखता है'''! दे दो वापस'''।

नहीं'''नहीं'' कर हम रखते हैं क्योंकि हम चाय के आदी हैं'''। चोरी और सीना जोरी का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है।

हम दूध के पानी में पानी मिलाकर चाय-शक्कर को गिराकर चाय पी आत्म-सन्तोष करते हैं'''।

पहली तारीख

'स्नान करते हुए पकड़े जाने का भय' के कारण हम शरीर पर गीला कपड़ा फेरकर ऑफिस जाने लगे तो श्रीमतीजी ने एक तारीख होने से आवश्यक सामान की सूची पकड़ायी।

दफ्तर से वेतन उठाया, साथ में रेजगारी की पोटली भी।

लौटते वक्त हम किराणा स्टोर पर पहुँचे और भाव सूची देखकर हतप्रभ रह गये—तेल 35/- मिर्च 25/- घी—स्टॉक में नहीं'''दूध का डिब्बा—स्टॉक समाप्त, गेहूँ 3/50 से 4, चावल 8 से 15/- तक, जीरा 45/-'''देखते-देखते दुकानदार से पूछा—

सेठ साहब! क्या ये आज के भाव हैं?

—'हाँ जनाब'''और कई चीजों के भाव बढ़कर भी हैं'' क्या करें बाबूजी? महाकाल है—'छप्पन सूं भी खोटो'''।'

हम नगण्य चीजें लेकर कोयले की दलाली पहुँचे। कोयले पाँच रुपये प्रति किलो।

कोयले वाला समझाने लगा—'अभी तो पेड़ लगाओ अभियान चल रहा है''' बड़े होंगे ' काटेंगे ' कोयले होंगे और शायद भावों में कमी'''।'

सब्जी के लिए रेजगारी दिखायी तो वह ऐसे देखने लगा मानो उसकी तौहीन की हो। सड़ी-गली सब्जी दो रुपये पाव से कम नहीं और महंगी सब्जी तो पाँच।

रुपये पाव भी···।

सब्जी वाले के बाद सीधे घर पहुँचे तब तक मात्र एक सौ रुपये बचे थे और वह रेजगारी बच्चों को भी पसन्द नहीं···लेकिन क्या करते हम···!

रेडियो शुरू किया तो सुनायी दिया—कम से कम चीजें खरीदें···ताकि गृहस्थी की गाड़ी डगमगा न जाये···

हमने निर्णय किया सिर्फ गेहूँ और नमक खरीदा जायें···पानी के पैसे चुका दिए जायें बाकी सभी चीजें अगले वेतन से महाकाल की छाया तक बन्द ··। बाकी चारा ही क्या था।

○ ○

कला-सृजन

□ रमेश गर्ग

(4-12-87)

अब मैं फिर एक बार पत्थर बीनने लगा हूँ। लगता है फिर कोई चित्र का सृजन होना है। सबसे पहले मैंने एक साधारण पत्थर लिया जिस पर मुझे कोई आकृति दिखाई दी। उसके बाद रेल लाइन के पास पड़ी हुई कंकरीट में से मैंने तीन-चार पत्थर उठा लिये और अनुभव करने लगा था कि इन छोटे-से पत्थरों में और प्रकृति की बड़ी-से-बड़ी चट्टानों में कितनी समानता है—मुझे यह भी लगा कि बड़े से बड़ा कलाकार भी प्रकृति के इन्ही अंशो को लेकर अपनी मनोकामना पूरी करता होगा—मेरे हाथवाले इन पत्थरो मे और किसी कलाकार की महान कला-कृति में न तो कोई भिन्नता है न कोई विशिष्टता, बल्कि मुझे तो यह भी लगा कि प्रकृति से भिन्न रहते हुये भी जो कलाकार अपनी कृति को विशिष्ट समझते है वे प्रकृति की इस ऊँचाई तक पहुँच पाते भी है या नही···

(15-12-87)

मुझे ऐसा लगने लगा कि क्यों न अधिकपत्थर चुनकरअधिक से अधिक अपनी तृप्ति कर डालू—कही नदी या समुद्र की यात्रा पर चला जाऊँ और विशिष्ट पत्थरो की खोज करूं। पर मैंने देखा कि विशिष्टता—हीरे और मोती में या साधारण पत्थरों में समान है—खूब बडी-बड़ी चट्टाने या विचित्र पत्थरो की खोज मेरी प्रवृति को विशिष्टता की ओर मोड़ रही है जब कि प्रकृति का एक-एक कण मुझे समान रूप से उत्कृष्ट लग रहा था।

(10-1-88)

मैं अपनी कला यात्रा मे बराबर यह महसूस करता रहा कि प्रकृति में बिखरे एक-एक कण हम मनुष्य सहित समान रूपी ही है। मैंने बहुत पहले कभी बादलों मे--पहाड़, नदी चट्टाने या मानवीय आकृतियाँ जब देखी थी तो मुझे लगा था कि यह पृथ्वी और उस पर स्थित मानव भी उस युनिवर्स की ठीक ऐसी ही छटा है जैसी मैं बादलो मे देख रहा हूँ—

मुझे यह भी आभास हुआ था कि प्रकृति की इस छटा को देखने के लिये मैं उपयुक्त पात्र नही हूँ बल्कि एक व्यापारी हूँ जो गंगा या टेम्स नदी के किनारे खड़ा हुआ भी प्रकृति को देखते समय इसलिए जल्दी करता है कि जिससे अधिक से अधिक नोट बीनने में कही कोई कमी न रह जाये—

(20-1-88)

मैंने सर्वप्रथम अण्डाकार पत्थर को लेकर यह धारणा बनाई थी कि यह गोल मटोल पत्थर मेरे उस पड़ोसी की तरह है जिसका पूरा शरीर तीन छोटे-मोटे इन गोल पत्थरो को रखने के बाद हूबहू दिखाई देता है। फिर दूसरे पिचके हुए पत्थर को देखकर मैं उस सम्भ्रांत व्यक्ति को याद कर रहा था जिसको मैंने कल ही ध्यान से देखा था। उसकी एक आँख मे खराबी है और दूसरी आँख चश्मे से ऐसी उभर जाती है कि बच्चे किसी अनजान व्यक्ति को उस रूप मे देख ले तो डर जायें। तभी मैंने सामने से आते हुये ऐसे व्यक्ति को देखा जिसके बाये हाथ का गाल इतना पिचक गया कि उसके मुख की रेखा कान से जाकर मिलती थी—इन अंग प्रत्यग लोगों को देखकर मुझे यह अहसास हुआ था कि कला के प्रारम्भिक विद्यार्थी का यह ज्ञान कि 'आँख के सीध मे आँख होती है' यहाँ आकर व्यर्थ सिद्ध हो जाता है।

(22-1-88)

अब मेरे पास सफेद चिकना मार्बल का पत्थर किसी गोरी चिट्टी जवान लड़की के लिए—और मुड़ा-तुड़ा बल खाया हुआ पत्थर संघर्ष खाये हुए श्रमिक के लिए था और साथ मे यह चिन्तन कि एक विशिष्ट कश्मीरी स्त्री में और अन्य कश्मीरी ही स्त्रियो मे कोई अन्तर होता है या नही—हम लोगो को सभी एक सी दिखाई देनेवाली ये स्त्रियाँ क्या अन्तर रखती होगी। दूसरे मिस्टर एक्स का प्रतिनिधित्व करने वाला यह पत्थर मुझे भारत भूमि में ही मिल पायेगा या दूर-दराज अमेरिका मे भी प्रकृति का रूप समान मिलेगा—'प्रकृति' भौगोलिक सीमा में बंध नही पाती तो फिर एक जगह विशेष के लोगों की चमड़ी और आँख, नाक की बनावट दूसरे लोगो मे भिन्न कैसे होते हैं और ऐसा है तो भौगोलिक प्रभाव इन पेड़-पौधो पर या पत्थरो पर भी भिन्न पड़ता होगा…

मुझे एक बार तो सम्पूर्ण पृथ्वी के मनुष्यो को 'रेवड़' के रूप मे एक से लगनेवाली

और फिर हजारो भेडों मे से अपनी भेड़ को मालिक द्वारा अलग से पहचान कर पाने की मन-स्थिति से गुजरना पड़ा कि प्रकृति के अश सर्वत्र समान होते हुये भी भिन्नता न रखते होते तो अपनी चीज को पहचानने में ही भारी मुसीबत का सामना करना पड जाता।

(28-1-88)

अब मेरी नजर कभी लोह-लक्कड़ की दुकान मे उस गोरी युवती का पारदर्शी "ओब्जेक्ट" ढूंढने में, कभी डामर की मुड़ी-तुड़ी टंकियो पर, कभी एक साथ पडी हुई बोरियो मे और कभी सड़क के किनारे लगाई गई फेंस पर रेगजीन बेचने वाले की दुकान पर और कभी नाई की दुकान पर ढेर लगे हुये वालो पर इसलिए टिकती है जिससे मैं यह जान सकू कि ये एक से दिखने वाले चेहरे रंगों में और अपने स्वरूप में कैसे-कैसे भिन्न होते जाते हैं।

(30-1-88)

अब तीन या चार चित्रो का सृजन मेरे विचाराधीन है—भौतिक दुनिया में "कला-सृजन" हो जाना भी मुश्किल काम है—मेरे इस काम में दूसरों का कोई सहयोग नही है बल्कि यह शिकायत है कि मैं जीवन का बहुमूल्य धन और समय आखिर इसमें क्यो नष्ट करता हूँ—

इन दिनो मेरी रुचि सफेद मोटी चीनी के मग पर, प्लास्टिक के सल खाये हुये जूतो पर, कत्थई रग की रेगज़ीन पर—मुलायम पानी छानने की जाली पर, पीली मिट्टी के रग के लकड़ी के गट्टे पर और सख्त स्टील की छड़ो पर इसलिए है कि मैं जो चित्र बनाना चाहता हूँ उनमे से एक 'भ्रूण' का, दूसरा घने पत्तो से ढके हुये नर-मादा पक्षियों का और तीसरा अनेक ऐसी मानव आकृतियो का है जिससे ये चित्र जीवन की कहानी कह सके कि प्रारम्भ से लेकर बीच के आपसी सम्बन्धो को व्यक्त करते हुए—जीवन के मच पर लोहे की छड़ो पर इसलिए लटक गये हैं कि प्रकृति मे सब दूर एक से दिखने वाले सब माननीय चेहरे बहुत सूक्ष्म रूप से एक से होते हुये भी कैसे-कैसे भिन्न हो गये है।

(4-2-88)

संयोग से जिस स्थान पर बैठा हुआ जहाँ से सृजन कर रहा हूँ वह घने बाजार के बीच छूटे हुये एक कब्रिस्तान का मैदान है जहाँ से मैं अपने चुने हुये रगो का और आकारो का सामने वाली दुकानो से दिखाई पड़ने वाली वस्तुओ से मेल बैठा रहा हूँ

. . . .

के नाम पर सृजन क्या औचित्य रखता है?··· ० ०

हम, हमारे अपने और हमारी दुनिया

□ काशीलाल शर्मा

11 अक्टूबर 87 रविवार। केनेडा के सुन्दर शहर माण्ट्रियल का हवाई अड्डा। रात्रि के 7-15 बजे। ज्योंही ईस्टर्न एयर लाइन्स की उड़ान से यहाँ उतरा तो देखता हूँ कि कुछ यात्री ही यहाँ होने से अन्य हवाई अड्डों की तरह यह हवाई अड्डा कम व्यस्त दृष्टिगत हुआ, किन्तु मुझे यहाँ आव्रजन की जाँच आदि का कार्य कराना था, पंक्ति में आगे बढ़ते रहे आव्रजन अधिकारी ने पूछा, "भारत से कब आये हो ?"

"अभी नहीं, बीस रोज पहले अमेरिका की यात्रा कर रहा हूँ," उत्तर था।

"कितने दिन ठहरेंगे ?" उत्तर था : "मात्र दो-दिन।"

"कहाँ ठहरेंगे ?"

"अन्तर्राष्ट्रीय संस्था सर्वास की सदस्या कुमारी केरोल बयार के यहाँ।" फिर भी अधिकारी बार-बार मेरे चेहरे की ओर देखकर सशंकित हो कुछ-न-कुछ प्रश्न करते रहे।

खैर। जब उन्हें विश्वास हो गया; कह उठे; 'ओ' के. हेव नाइस ट्रिप।' मेरे पास मात्र एक हेण्ड बेग था, शीघ्र ही बाहर बाज़ में आया और दूरभाष पर बात करना चाहा तो केनेडियन मुद्रा के 'पच्चीस सेण्ट' का सिक्का डालना था। वहाँ एक बैंक था वह बन्द हो चुका था अतः एक छोटे से रेस्तराँ की व्यवस्थापिका से अमेरिकन डालर के बदले कुछ केनेडियन सिक्के लिये।

केनेडियन क्वार्टर का सिक्का डालकर दूरभाष पर बात हुई। संयोगवश कुमारी केरोल से बात हो गयी।

"नमस्ते ! कुमारी केरोल।"

"मैं काशीलाल शर्मा बोल रहा हूँ।

"हम आ गये है। क्या आप हमें लेने आ सकती हैं ?"

उत्तर था : "नही मि. शर्मा। मेरे पास कार नही है। आप शीघ्र ही आजाइये, मुझे अभी मेरी सहेली के साथ बाहर जाना है। दो घण्टे के बाद हम लौटेंगी।"

इतने मे ही सयोग से एक टैक्सी चालक हमें बार-बार उसकी टैक्सी में जाने हेतु कह रहा था। आखिर हमने निश्चय कर लिया, पता बताया तो बोल उठा :

—ओह ! हचिसन रोड, यह तो मेरे पास मे ही है। मैं उधर होकर ही जाऊँगा। आप चलिये देरी न करिये।

उसकी अधिक जल्दी हमे सशकित भी कर रही थी।

खैर। हमने अमेरिकन डालर देना तय किया और प्रस्थान किया !

टैक्सी चालक मार्ग मे प्रश्न करता रहा।

"आप भारत से आये है ?"

उत्तर था, "हाँ ! पर बीस दिन पहले ! अमेरिका में घूम रहे हैं।

और यहाँ से परसो फिर अमेरिका जाकर वहाँ से उन्नीस अक्टूबर को भारत के लिए प्रस्थान करेंगे ?"

"आप हिन्दू हैं ? सिक्ख या मुसलमान ?"

थोड़ा रुका और तपाक से मैंने उत्तर दिया, "हम मात्र इन्सान हैं।"

इन्सान को मात्र इन्सान के रूप मे जानना ही अच्छा है।

फिर प्रश्न था, "फिर भी आप इनमें से कुछ पर तो विश्वास करते ही होंगे।"

उत्तर दिया, "विश्वास था, अब भी है, पर जब धर्म ने इन्सान को इन्सान से बाँटना व मारना शुरू किया, आस्था नष्ट होग यी। धर्म इन्सान को इन्सान से जोडने के लिए है, यदि यह तोड़ता है वह धर्म नही।"

फिर प्रश्न था, "अच्छा तो बताइये वहाँ आपसे झगड़ा होता है।"

मेरा उत्तर था, "झगड़े तो सामान्यता सभी जगह होते है, आपके देश में नही होते ?"

मैने इस विषय को बदला और कहा, "अब कितना दूर है वह स्थान ?"

उत्तर था, "अब आनेवाला ही है।"

मैंने कहा, "कभी भारत आइये। स्वागत है।"

"हाँ ! आना चाहता हूँ। किन्तु पैसों की व्यवस्था करनी पड़ेगी। भारत देखूँगा अवश्य।"

इतने मे हचिसन रोड पर मकान सं. 5950 के आसपास हम आ गये, मकान ढूंढ़ते ही टैक्सी चालक को किराया देकर हमने ऊपर सीढ़ी पर जाकर घण्टी बजायी।

कुमारी केलोर की सहृदय वाणी "यस, कमिंग" ने हमें सन्तोष दिया। कुमारी केलोर दुबली-पतली किन्तु एक साहसिक एवं संघर्षों को जीवन का शृंगार समझने वाली नारी के रूप में दृष्टिगत हुई।

आपस मे मिलने की औपचारिकता हेतु स्वागत व धन्यवाद शब्दो का उच्चारण कर अपना कमरा देखा, नाश्ता किया और वे अपनी सहेली के साथ, जिसने भारत को दो बार लगभग 6 माह तक देखा था, बाहर घूमने चली गयी।

हमने अपना स्थान पाकर शान्ति ली किन्तु टैक्सी चालक के प्रश्न अब बार-बार मस्तिष्क मे आ रहे थे; आखिर क्या बात है ? केनेडा के लोग भारतीय से मिलते ही इतने सशंकित हो प्रश्नों की झड़ी क्यों लगा देते हैं ? इतनी क्या आशंका भरी हुई है यहाँ भारत के बारे में ? क्या हमने यहाँ आने की गलती की है ? इस देश को जिसे हम अमेरिकी महाद्वीप का सिर-मौर समझते है वहाँ क्या हमारे भारतीय भाई भी कही संशकित तो नही ? कौन बाँटता है आखिर हम लोगों को ? कौन फैलाता है यह नफरत का विष ? जो हमें हमारे अपने लोगो से भी बाहे मिलाने के बजाय सन्देह के घेरे में बलात् धकेल देता है।

मुझे वह दु खद स्मरण हो जाता है, जब 1 अक्टूबर को अमेरिका के मिल्वा की शहर में एक भारतीय रेस्तराँ मे भारतीय भोजन करने के बाद मैं एक अन्य बार की तरफ मुड़ता हूँ तो एक नवयुवक सरदार को जो वहाँ के विश्व विद्यालय मे अध्ययनरत है; अकेला बैठा हुआ शीघ्रता में भोजन करते हुए देख तपाक से कह उठता हूँ।

"कहो ! सरदार भाई कैसे हैं आप ? इधर अकेले क्यों खाना खा रहे है ? उधर हमारे साथ आ जाते !"

नवयुवक विद्यार्थी बहुत विनम्र एवं शिष्ट लगा, किन्तु उसकी कृत्रिम मुस्कान ने मेरे हृदय को कचोट लिया, गले मिले। पढ़ाई आदि के बारे मे बात की, तो आत्म-विश्वास से सभी बातें बतायी। मैंने उनके शुभ भविष्य के लिए मंगल कामना की व उत्तर मे धन्यवाद शब्द पाकर हमारे अमेरिकी अतिथेय व भारतीय साथियों के साथ हम बाहर आये।

मुझे दु ख हुआ यह जानकर कि जहाँ हमारे गाँव व आस-पास के किसी व्यक्ति से भारत में ही सुदूर कही मिलते तो अपनापन जागृत हो जाता है, और दु ख-सुख

मानव मस्तिष्क अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँचने का दावा करता है वही हृदय की दूरी की खाई को क्यों गहरी करने को उन्मुख है ? आखिर हम लोग किनसे प्रभावित हैं ? उन लोगों से, जो हमे अपने लोगो से तोड़ने का दुस्साहस करते हैं ? वे लोग जो इन्सान को इन्सान से घृणा करने का प्रोत्साहन करते हैं ?

मुझ पुनः स्मरण आया वह दिन, जब मैं मई 1970 मे अध्यापक दल मे चयनित होकर अमेरिका दो माह के प्रवास हेतु गया था। अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन के केन्द्रीय पुस्तकालय मे कुछ देर अध्ययन कर जब मैं लिफ्ट से लौट रहा

था तो सयोग से मेरे साथ एकमात्र पाकिस्तानी भाई और लिफ्ट में थे। मैंने अपना ही समझ पूछा। आप कहाँ से हैं? उत्तर था, "आपके पड़ौसी देश से।"

आश्चर्यान्वित हो मैंने फिर पूछा—पड़ौसी देश! कौन-सा पड़ौसी देश?

उत्तर था, "पाकिस्तान।"

थोड़ा अधीर हो बोल उठा, मेरे भाई पाकिस्तान को आप पड़ौसी देश कहते हैं? आपके इस उत्तर ने मेरे हृदय को आघात पहुँचाया है। पाकिस्तान मेरा पड़ौसी देश! यह तो मेरा भाई देश है। पहले हम एक थे। हमारी वही चिनाब, झेलम नदियाँ वही करांची, लाहौर शहर जहाँ भारत को आजाद कराने के लिए हम लोगों के साथ कुरबानियाँ दी हैं, हमारे बचपन में अपने भारत के नक्शे में हम सिन्ध बिलोचिस्तान बनाते थे।

इतना सुनते ही वह पाकिस्तानी भाई गले मिल गया, और मेरा नाम पूछकर कह उठा:

'शर्माजी इस प्रकार की प्रेम की बातें कौन करता है?' जितने में लिफ्ट से धरती स्थल आ गया, और वे आग्रह कर बोले, "शर्माजी मैं यहाँ इन्जिनियर हूँ, मेरे घर आज चलकर मेरे परिवार के साथ रहेंगे तो मुझे खुशी होगी।"

वही व्यक्ति जो कुछ क्षण पहले मुझसे बात करने में भी संकोच कर कम-से-कम उत्तर देकर लिफ्ट से जल्दी बाहर हो अपना रास्ता लेने को तत्पर था, वह मुझे अपने घर ले जाने को आतुर था। खैर! मैंने अपनी विवशता प्रदर्शित की और फिर कभी अवसर मिलने पर दर्शन का सौभाग्य मिलेगा, ऐसा सोच हमने अपना-अपना रास्ता लिया!

ये दोनों उदाहरण तो अपने लोगों के है, और अब मैं चलता हूँ मेरी सात विदेश यात्राओं के अनुभवों से जो कुछ प्राप्त हुआ—

सन् 1970 में मैंने जिस आतिथेय अमेरिकी परिवार में एक माह बिताया था, उन्हें कभी-कभी चित्रमय तिथि पत्र भेजता रहता हूँ। एक बार उस तिथिपत्र को मैंने रूस द्वारा प्राप्त एक पत्रिका के आवरण में लपेटकर भेजा था, और जब मैं 82 में अपनी दूसरी अमेरिकी यात्रा में उनसे मिला तो पहला ही उनका प्रश्न था व प्रश्न के साथ उपालम्भ भी, "काशी! तुम रूसी पत्र पत्रिकाएँ पढ़ते हो?"

उत्तर था: हाँ! क्या बुराई है। इसमें साहित्य तो पढ़ना ही चाहिए। पर आपको यह कैसे पता लगा?

उन्होंने मेरे उस तिथिपत्र के आवरण का हवाला देकर कहा—रूस में दासता है, स्वतन्त्रता नहीं। लोकतन्त्र नहीं साम्यवाद है!

मेरा निवेदन था, आप किससे प्रभावित हैं? राजनीति से! क्या अमेरिका में सब कुछ ठीक होना है। अमेरिका सब कुछ ठीक करता है। आपको यहाँ शासन व लोगों से कोई शिकायत नहीं? मेरी मान्यता है। हमें खुले मस्तिष्क से सब कुछ पढ़-

कर समझकर अपने विवेक से निर्णय लेना चाहिए। दुनिया के सभी राजनेता विश्व मे शान्ति-सद्भाव व पारस्परिक मित्रता की बात दोहराते हैं तो फिर भी शान्ति एक समस्या क्यों है ? आप, हम तो अपना निर्णय ले सकते हैं—उसी देश अमेरिका के शिकागो शहर में एक विशाल भवन के नीचे एक नवयुवक कागज के गत्ते पर (हग्री एण्ड होमलेस प्लीज हेल्प मी) भूखा व बेघर बार हूँ कृपया मदद करें—लिखा। जबकि इसी वर्ष जुलाई मे रूस यात्रा के दौरान मेरे एक डाक्टर साथी ने मुझसे कहा, "क्या हम यहाँ किसी घर व परिवार को देख सकते हैं ?"

मैंने कहा, "क्यो नही चलिये इसी सामने के घर में, जहाँ वह महिला अपने बच्चे को लेकर प्रवेश कर रही है।"

हमने उस महिला के पीछे मात्र सकेतो से उनके घर में प्रवेश किया, टूटी-फूटी रूसी व अंग्रेजी मिश्रित भाषा में सभी बातें की, बच्चे को गोद में लेकर प्यार कर एक रुपये का भारतीय सिक्का दिया और घर देख आये। उक्त महिला के पति ने भी हमारा हार्दिक स्वागत किया।

शिकागो की सड़को पर गोरे व काले लोगों का प्रदर्शन देखा जिसमें वे दक्षिणी अमेरिका के विरुद्ध नारे लगा रहे थे—"फ्री मण्डेला" मण्डेला को मुक्त करो। इधर अफगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप की बात होती है, जबकि अमेरिका निकारागुहा, वियतनाम, कांगो, व कोरिया मे मात खा चुका है। इधर इंगलैण्ड ने, जो एक समय संसार मे अपने शासन में सूर्यास्त नही देखने का दम्भ रखकर आज दक्षिणी अफ्रीका के बारे में मौन धारण कर रक्खा है। केनेडा के प्रधान मन्त्री का वह स्पष्ट आवेदन कि वह राष्ट्र मण्डल सम्मेलन में दक्षिणी अफ्रीका के बारे में किसी की नाराजगी की परवाह न करने का साहस दिखाते हैं।

मैं इसे एक शुभ प्रयास ही मानूंगा कि आज विश्व की दो शक्तियां नाभिकीय शस्त्रो के नियत्रण हेतु किसी शान्तिपूर्ण समझौते की ओर प्रयास रत हैं ! किन्तु क्या इनका राजनैतिक दम्भ मानव जाति की सेवा हेतु अपनी कुरबानी कर सकता है ? क्या देते हैं ये लोग दुनिया को शस्त्र ? क्या इससे भूखे लोगो का पेट भरेगा ? हमें खेतों मे अनाज पैदा कर मानव जाति को भूख से सन्तुष्ट करना है या शस्त्र बाँटकर मानव जाति का ह्रास करना है। क्या हम दूसरे विश्व युद्ध की उस भयानक घटना को विस्मृत कर गये, जहाँ धर्म व राजनीति के दम्भ पर मुस्कराते बच्चों व हँसते परिवारों को मृत्यु बंकरो मे डालकर अस्थियो का ढेर लगा दिया गया।

क्या आज बीसवी सदी की सभ्यता के दम्भ में चूर इन्सान इन्सानियत का मार्ग अपनाने का एहसास करने में अक्षम है ?

हो सकता है, पाठक स्वीकार न करें आज विश्व की मानव जाति के दो भयानक दुश्मन है धर्म और राजनीति। हमें अपने विवेक को जाग्रत करना है।

○ ○

सम्पर्क-सूत्र

शीतांशु भारद्वाज : 138, विद्या विहार, पिलानी
गोपाल प्रसाद मुद्गल : परियोजना अधिकारी प्रौढ़ शिक्षा, भरतपुर
पुष्पलता कश्यप : राजकीय बा. मा. विद्यालय महामन्दिर, जोधपुर
गिरधारी लाल व्यास : छबीली घाटी, बीकानेर
ब्र. ना. कौशिक : बिहाणी शिक्षा महाविद्यालय श्री गंगानगर
गिरवर प्रसाद बिस्सा शास्त्री : व. थ. रा. उ. मा. विद्यालय अनूपगढ़
रूपनारायण काबरा : चौधरी भवन, जोबनेर
रवीन्द्र डी. पण्ड्या : ज. मा. उ. मा. विद्यालय खड़गदा, (डूंगरगढ़)
हनुमान दीक्षित : रा. उ. प्रा. विद्यालय नं. 1, नोहर
विद्या पालीवाल : एफ/38 पोलो ग्राउण्ड, उदयपुर
सरला भूपेन्द्र : एस. पी. आर. सहरिया उ. मा. वि. कालाडेरा
गणेश तारे : प्राचार्य, एलबर्ट आइस्टाइन स्कूल, सिटी पैलेस गढ़ कोटा
भगवतीलाल व्यास : 35, खारोल कालोनी फतहपुरा, उदयपुर
जानकी प्रसाद पुरोहित : जी. डी. रा. उ. मा. वि. रामगढ़, शेखावाटी
देवप्रकाश कौशिक : राज. उ. मा. विद्यालय सैंपऊ (धौलपुर)
दीनदयाल शर्मा : 130-31, सैक्टर-12, हनुमानगढ़ जं.
भगवतीलाल शर्मा : उ. प्रा. वि. कश्मौर (चित्तौड़गढ़)
रामस्वरूप परेश : पीरामल उ. मा. विद्यालय बगड़, (झुंझुनू)
अर्जुन 'अरविन्द' : काली पलटन रोड, टोंक
जगदीश प्रसाद सैनी : प्र. अ. राज. मा. विद्यालय, प्रीतमपुरी (सीकर)
त्रिलोक गोयल : अग्रवाल उ. मा. विद्यालय, अजमेर
गौरीशंकर आर्य : कवि कुटीर चौमहला झालावाड़
प्रेमपाल शर्मा : प्र. अ. राज. मा. विद्यालय खैरव (पाली)
श्याम मनोहर व्यास : 15, पंचवटी, उदयपुर
राधेश्याम सिंहल : रा. उ. मा. विद्यालय सैंपऊ (धौलपुर)
निशान्त : द्वारा श्री बसन्तलाल हेमराज पीलीबंगा
रमेश गर्ग : रा. उ. मा. विद्यालय निम्बाहेड़ा
मोहन योगी : फेफाना, जि. श्री गंगानगर
छगनलाल व्यास : रा. मा. विद्यालय भूती (जालौर)
भगवन्तराव गाजरे : सी. 21, आदर्श कालोनी निम्बाहेड़ा
जयसिंह चौहान जौहरी : जौहरी सदन काव्य वीथिका कानोड, (उदयपुर)
विश्वनाथ पण्ड्या : मुक्तांगन जेठाना (डूंगरपुर)
विष्णुलाल जोशी : प्र. अ. प्रा. विद्यालय, वल्लभनगर, उदयपुर
विश्वम्भर प्रसाद शर्मा विद्यार्थी : विवेक कुटीर, सुजानगढ़
विमला डोरथी : रा. उ. मा. बालिका वि. भीमगंज मण्डी कोटा
वैजनाथ शर्मा : लोक तिलक. शि. प्र. महाविद्या. टोंक
उमा चतुर्वेदी : सैफियाह उ. मा. वि. प्रतापगढ़ (चित्तौड़गढ़)
काशीलाल शर्मा : सी-35, राधाकृष्ण नगर भीलवाड़ा

● ●



रामप्रसाद दाधीच

चार दशकों से हिन्दी एवं राजस्थानी की सभी विधाओं में सृजनरत वरिष्ठ साहित्यकार।

प्रकाशित कृतियाँ : कुहुकिनी, किशोर भारती, अजन्मा का दर्द, *स्वर लहरी, खंडिता, स्वप्नबिम्ब, शब्द जो ब्रह्म है,* अभी तो मैं जिंदा हूँ ।

जोधपुर विश्वविद्यालय के वरिष्ठ एसो० प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त तथापि शोध एवं लेखन कार्यों में संलग्न ।

'लोक साहित्य शोध' अर्धवार्षिकी एवं 'रंगयोग' का सम्पादन । लोक साहित्य केन्द्र, जोधपुर के संचालक ।